प्रकाशक—आनन्द पुस्तक भवन वाराणसी
मुद्रक—कल्पना प्रेस वाराणसी
चित्रकार—मनोरञ्जन काञ्जिलाल
द्वितीय संस्करण १५ अगस्त सन् १९६० ई०
मूल्य दो रुपया पचास नये पैसे
रु० २.५०

'सियाराम, भाई।'

'भाई, सिया राम।'

'कल्लू! चना सवा सेर का हो रहा है। मिलता नहीं। लड्डू का भाव पड़ि है? दुर्गा माई की कृपा है।'

'गृहस्थ (किसान) तो और लूट रहे हैं।'

'संकटमोचन वह दण्ड घुसेड़िहैं कि सब सपाट हो जइहैं। भला, गाहक कलपेंगे या चुप रहेंगे?'

'जै सिया राम।'

'इधर जल है। इधर आइये बढ़िया लड्डू।'

'ससुर शकर मोती भस्म हुई है।'

'भाई गोपालू, चना मार लिआवा कहीं से।'

'जै सियाराम।'

'जै जै सियाराम।'

'इधर आइये, इधर।'

व्यंग

व्यंग भी हास्य का ही एक अङ्ग है। इसकी उत्पत्ति शब्दों के उत्तम चुनाव से होती है, जिनके प्रयोग में ऐसी वाकचातुरी हो, जिससे दो आशय प्रकट होवें। एक प्रत्यक्ष, जो हृदय को गुदगुदावे और दूसरा गुप्त, जो बुराइयों को निर्मूल करने के लिए चुटकी भी ले। क्योंकि इसका उद्देश्य सदा बुराइयों को दूर करना रहता है। इस प्रकार व्यंग हँसमुख सुधारक का काम करता है।

सुधार की बातें ऐसी सूखी होती हैं कि कानों ही तक पहुँच कर रह जाती हैं। हृदय और दिमाग तक प्रवेश करने का उनमें दम नहीं रहता। इसीलिए वे अधिकतर प्रभावहीन हुआ करती हैं, मगर व्यंग अपनी हँसमुख प्रकृति से हृदय और दिमाग को पहले ही अपनी मुट्ठी में कर लेता है, तब जाकर सीधे उन पर चोट करता है। अतः इसका प्रभाव कभी निष्फल नहीं जाता। यही कारण है कि इसकी रचना के लिए अपूर्व कल्पना, अनोखी निरीक्षण-शक्ति के अतिरिक्त भाषा, विषय तथा मानवी प्रकृति का पूर्ण ज्ञान भी चाहिये और साथ ही साथ शैली में भी काफी सावधानी दरकार है। अन्यथा तनिक-सी लापरवाही से इसका सारा कारबार चौपट हो जाता है। इस प्रकार कला की दृष्टि से व्यंग की रचना अति कठिन होने के कारण व्यंग का स्थान हास्य तथा साहित्य में महत्वपूर्ण है।

हिन्दी में कई उच्चकोटि के लेखक व्यंग की सेवा सफलतापूर्वक कर रहे हैं, और बड़ी तत्परता से इसके भण्डार की पूर्ति करते जा रहे हैं। जिनमें श्री कौतुक बनारसी का नाम उल्लेखनीय है। प्रस्तुत संग्रह आपके अनमोल व्यंग-निबन्धों का है। व्यंग-क्षेत्र में आप की लेखनी कैसा चमत्कार दिखाती है, यह हिन्दी संसार से छिपा नहीं है।

आपकी भाषा साफ और सुथरी है। कहीं भी शब्दों की गुत्थियों से जकड़ी हुई नहीं है जो दिमाग को उलझा कर प्रभाव का ही नहीं, पाठकों को भी दूर भगा देती है। शैली भी आपकी निराली और अपनी है जो हृदय को रिझाती और गुदगुदाती हुई ठीक अपने लक्ष्य पर पहुँचा देती है। इस प्रकार आपके निबन्धों में सजीवता, रोचकता तथा मनोरञ्जकता यथेष्ट मात्रा में है जो मन को ऐसा लुभाये रखती है कि पुस्तक छोड़ने का जी नहीं चाहता। साथ ही साथ आप इतनी सफाई से चुटकी लेते रहते हैं, जिसका चिरस्थायी प्रभाव हृदय पर बिना पड़े नहीं रहता।

श्री कौतुक बनारसी की इस उत्तम कृति पर मैं हृदय से बधाई देता हूँ।

गन्नाश्रम, गोंडा
२०-४-४२

डी. पी. श्रीवास्तव

पैरवी

मेरे मनोरञ्जक निवन्धों को इकट्ठा कर छाप देने से यह किताव तैयार हो गयी है। ढूँढ़ने से इसमें किताव के वहुत कम गुण दिखाई पड़ेंगे, जैसे यह वहुत मोटी नहीं है, इसमें महान पुरुषों की पैरवी नहीं है, सम्मतियाँ भी नहीं दी गयी है, विचारों में सागर-सी कौन कहे, कुएँ-सी भी गहराई नहीं है, भाषा में सस्कृत के शब्दो का अभाव है, विषय ऊल-जलूल हैं। मगर एक झुण्ड कमियों के होते हुए भी मेरे मित्रों का आग्रह था कि उनकी ठोस राय का सम्मान कर इन निवन्धो की किताव अवश्य तैयार करायी जाय।

किताव में अनेक श्रद्धेय महानुभावों के नाम आये है, यदि आपको नामों का उपयोग अप्रासंगिक और फजूल लगे तो लेखक की लाचारी समझकर उसे क्षमा कर दीजियेगा, यदि उचित लगे तो कोई शावाशी का कार्ड भेजने का कष्ट मत उठाइयेगा।

साप्ताहिक 'आज', 'आदर्श', 'विश्ववन्धु', 'वीर भारत', 'तरङ्ग', 'स्वतन्त्र भारत' जैसे प्रतिष्ठित पत्रों के सम्पादक महोदयों ने इन निवन्धों को प्रकाशित कर कभी मेरा उत्साह वढाया था, अत. उनके प्रति साभार कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

यदि इस किताव से आपका कुछ मनोरञ्जन हुआ तो वह आपके पढ़ने का, यदि नहीं तो वह मेरे लिखने का फल है।

लक्ष्मी-निवास
चेतगंज, वाराणसी.

शिवमूर्ति शिव
[कौतुक बनारसी]

क्रम

०

१. बनारसी १
२ गाधीजी को श्रद्धाजलि ७
३ सपने मे गाधीजी १०
४. अफवाहों की आँधी १६
५ बेवकूफी की हद नहीं होती २३
६ साहित्यिक ठग २७
७ जब मैं लीडर हो जाऊँगा ३२
८ अखिल स्वर्गीय कवि-सम्मेलन ३७
९ कवि-सम्मेलन ४६
१० सरपटवादी साहित्य-सम्मेलन ४९
११. रोमास ५६
१२ निज कवित्त केहि लाग ५९
१३ चुनाव ६३
१४. भावी कवियों के पत्र ६५
१५ गिरहकट साहित्यिक ६९
१६ इतजार का मजा ७३
१७ साहित्यकारों की खोपड़ी ७७
१८ छपास और डकैती ८१
१९ अपनी जवानी ८८
२० चौराहे पर ९६
२१ अखिल भारतीय कुत्ता सम्मेलन १०२
२२ अभिभाषण १०७
२३ सभ्यता की चढ़ाई ११५
२४ कला का कचूमर १२२
२५ कवि सम्मेलन १२७
२६ सम्पादकों की किस्म १४०

———

कविवर काशीनाथ उपाध्याय 'भ्रमर'

'बेधड़क' बनारसी को

बनारसी

जम्बू नामक द्वीप के भरत नामक खण्ड में आर्यावर्त नाम का एक देश है। इसी देश में बनारस नामक एक शहर है। बनारस को आजकल के कवियों के उपनाम की तरह काशी नगरी का उपनाम समझा जाता है। जहाँ आज शहर बनारस है पहले ठीक वहीं काशी नगरी थी, ठीक वैसे ही जैसे पहले जहाँ मर्द थे, अब वहाँ औरतें हैं।

उर्दू वाले इसे 'बिनारस' कहते हैं और अंग्रेजी वाले 'बेनारस'। बङ्गालवाले 'बोनारस' कहना अधिक उचित समझते हैं, क्योंकि उन्हें पता है कि दुनिया गोल है और प्रत्येक बात मुँह गोल बनाकर कहनी चाहिये। जब काशी नगरी बनारस शहर हो गयी, तब उसे कैलाशपति ने अपने त्रिशूल से उतारकर जमीन पर रख दिया। वह तीन लोकों से न्यारी न रहकर दुनिया के भीतर आ गयी; और तब उसमें और अजायबघर में कोई भी अन्तर नहीं रह गया।

बनारस के निवासी बनारसी हो गये। चूँकि बनारस किसी समय काशी के रूप में त्रैलोक्य से बाहर था, इसलिए बनारसी हर एक बात में लोगों से भिन्न रहने लगे। आप किसी भी बनारसी को कहीं भी पहचान सकते हैं। उनकी अपनी विशेपता है। इसके लिए वे, बनारसी बोली में, 'सरनाम' हैं। आप शिष्ट भाषा में 'प्रसिद्ध' कह लीजिये। किन्तु उनकी पहचान के लिए उनके गुणों से परिचित होना पड़ता है। बनारस में पहले बहुत

थोड़े बनारसी थे, क्योंकि तब आबादी बहुत थोड़ी थी। अब वह बहुत बढ़ गयी है—बढ़ती जा रही है। लेकिन इसके यह माने नहीं कि बनारसियों की संख्या में भी कोई वृद्धि हुई है। वे जितने पहले थे, उतने आज भी हैं।

बनारस की बात तो आपने सुनी, जरा बनारसी की बात सुन लीजिये। इनके कई वर्ग हैं। पहले साहित्यिक वर्ग के बारे में सुनिये। साहित्यिक तो बनारस में दल के दल बिखरे हुए हैं। इनसे हिन्दी जगत भय खाता है। लोग बनारसी साहित्यिकों को ईश्वर के घर से भेजा हुआ पैगम्बर समझते हैं। जो नहीं समझते, वे बनारस में प्रवेश करने की चेष्टा नहीं करते। इनमें भी विभाग हैं, जैसे वर्ष में महीने होते हैं, महीने में दिन, दिन में घण्टे, घण्टे में मिनट और मिनट में सेकेण्ड। सत्य पूछिये तो प्रत्येक बनारसी साहित्यिक को हिन्दी जगत पर नाम-पता प्रकट करने का पूरा अधिकार है, लेकिन इसे हास्यरसवालों ने अपनी चीज बना लिया है। दूसरे साहित्यिक नाम के आगे अपनी जाति का नाम लिखने में सङ्कोच करते हैं। पण्डित रामचन्द्र शुक्ल के विभागवाले कभी ऐसा सोच भी नहीं सकते। एक साहित्यिक ने पिछले दिनों अपना उपनाम 'बेवकूफ' रखा। अब सवाल यह उठ खड़ा हुआ कि आगे बनारसी रखा जाय या नहीं। क्योंकि इसमें जाति की बेइज्जती का प्रश्न था।

बनारसी साहित्यिकों में भोजन करने की प्रथा नहीं-सी है। वे जलपान कर लिया करते हैं। इसमें लेखादि लिखने या कविता सुनाने के अमूल्य समय का दुरुपयोग भी नहीं होता और जिन्दगी के खतम होने का डर भी नहीं रहता। पेट बैंक की तरह भरनेके लिये कत्तई नहीं बनाया गया है। वह तो सिर्फ जीने के लिए है। सो, कई बनारसी साहित्यिक ऐसे भी हैं जो जलपान भी नहीं

करते, सिर्फ अन्न सूँघ लिया करते हैं। इतना भोजन करते ही वही ताजगी आ उपस्थित होती है, जिससे किसी का भी मजाक मजे से उड़ाया जा सकता है। वनारसी साहित्यिकों में से एक पण्डित जवाहरलाल और महात्मा गाँधी का फोटो अपने कमरे में रखना अधिक पसन्द करते हैं। दूसरे किसी कामरेड का। कोई-कोई हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के प्रेमी वावू पुरुषोत्तमदास टण्डन का भी रखना पसन्द करते हैं, लेकिन वह सर्वत्र इफरात मिलता नहीं। किसी ने एक अवसर पर यह सुझाव भी दिया था कि उर्दू-भक्तों का फोटो भी टाँगना चाहिये, क्योंकि जव उर्दू राष्ट्र-भाषा वन जायगी तो वनारसी साहित्यिकों को रोटी का प्रवन्ध करने में उनसे वड़ी मदद मिलेगी।

वनारसी साहित्यिकों में एक दल वजड़ेवालों का भी है। इनके द्वारा चाँदनी रात का सदुपयोग कुछ कवियों और आठ आने की भाँग की वदौलत मजे में कर लिया जाता है। एक ऐसा भी वनारसी दल है जो किसी समय छायावाद के सामने सीना खोलकर इसलिए खड़ा हुआ था कि या तो वह मरेगा या छायावाद। किन्तु अफसोस कि छायावाद अव इस असार संसार में जीता ही न रहा, वल्कि मोटा-तगड़ा युवा से वृद्ध भी वन गया और उसके ये विरोधी वनारसी साहित्यिक केवल सवैया लिख-लिखकर कोसते रह गये। अव ये 'सवैया' का पिण्ड छोड़ कभी-कभी अढ़ैया भी लिख वैठते हैं। वनारसी साहित्यिकों में एक ऐसा भी विभाग है जिसके सदस्य गिने-चुने हैं। लेकिन सवके सव मौन साधना में तल्लीन हैं। कौन जाने, अपना-अपना महाकाव्य सव एक साथ ही हिन्दी जगत के सम्मुख रखें। कहनेवाले इसे 'गगन-विहारी-दल' कहते हैं। आसमान में कुल कितने तारे हैं, ये उन्हें गिन चुके हैं। वनारस में केवल साहित्यिक ही नहीं, डाक्टर भी

ड़ते हैं। इसलिए बनारसी डाक्टरों के बारे मे भी लिखना होगा। ब्रह्मा के घर से सिर्फ इसलिए भेजे हैं, ताकि पृथ्वीपर आकर नारस मे कोई गली ऐसी न रख छोड़ें, जिसके बारे मे नगर-ालिका यह कह सके कि अमुक गली मे कोई डाक्टर नहीं। पिछले र्ष जब चित्रगुप्त ने गणना की थी तो उनको पता चला कि फिल-ाल बनारस मे उतने ही डाक्टर हैं जितने रोगी हैं, इसलिए ाबड़ाने की कोई बात नहीं है। इन डाक्टरों के विचार से काशी ा कोई साहित्यिक नहीं, जो टी० बी० का 'पेशेण्ट' न हो।

बनारसी लोगों में कुछ ऐसे भी हैं जो कैलाशपति भोलानाथ े परम प्रिय शिष्य हैं। घाटों पर रहते हैं। ये कभी-कभी दो ामछों, एक लंगोट, एक पुडिया भाँग, एक सिल और एक लोढा े अधिक वस्तुओंका अपने को अधिकारी नहीं समझते और न इन्हे यही चिन्ता सताती है कि ब्रिटेन का मजदूर दल अच्छा है या टोरी दल अथवा पाकिस्तान से बढकर हिन्दुस्तान है। अपनी दुनिया अपनी मस्ती—बस, तीसरी वस्तु दुनिया मे है ही कहाँ? इन्हीं से मिलता-जुलता एक और बनारसी मनुष्योंका दल है जो घाटों पर ही रहता है। काशी करवट से लेकर 'भारतमाता' तक का दर्शन इस जाति विशेष की कृपासे हो सकता है। बनारस का असली प्रतिनिधित्व यदि कोई करता है तो अकेला यह घाटोंवाला दल ही।

बनारसी आदमी तो होते ही हैं, बनारसी साड़ियाँ भी हुआ करती हैं। इसके निर्माण-कर्ता विशुद्ध बनारसी कहे जाते हैं। सोने-चाँदी की खड़ी सिलको कपडे के रूप मे बदलने का कलापूर्ण कार्य इनका अपना आविष्कार है। प्रातःकाल से लेकर संध्या ६॥ बजे तक करघेका अखण्ड सम्बन्ध जोड़कर गान्धी जी के रचना-त्मक कार्यक्रम के एक महान अंश की पूर्ति करने को ये चाहे

तो दम भी भर सकते हैं लेकिन यह तो कभी नहीं कह सकते कि ये खद्दरधारी अहिंसावादी ही हैं।

बनारसी इक्कों के बारेमें कजलियों में तो काफी लिखा जा चुका है। विषय सुन्दर है भी। अगर आप किसी बनारसी इक्के पर बैठे जायँ तो उसकी चालमे विचित्र फारमूला घटते हुए पायेंगे। यदि वह दो मिनट में तीन गज आगे बढ़ेगा तो तीसरे मिनट में एक गज पीछे हट आयेगा। इस प्रकार हिसाब लगाकर समझ लीजिये कि चाल में कौन-सी विशेषता है। कोई-कोई तो जब दौड़ने लगते हैं तब कुछ क्षण के लिये यह भूल जाते हैं कि उनके सामने सृष्टिका कोई भाग भी है। ऐसे इक्कों को गहरेबाज और उसके सवारों को ठीक अर्थ में बनारसी कहा जाता है। कुछ दिन हुए बनारसी नगरपालिका ने गहरेबाजों से तंग आकर शहर की सड़कों पर आठ-आठ अंगुल गहरे गड्ढों और चार-चार इञ्च धूल का प्रबन्ध कर दिया था। इस प्रबन्ध मे उस का काफी व्यय बैठ गया।

बनारसी ठगों के बारे में कुछ न कह देनेसे, वह यह दोषारोपण कर सकते हैं कि इतिहास में मेरा नाम नहीं रखा गया। रईसों में और बनारसी ठगों मे ऊपर से कोई अन्तर नहीं होता। कभी-कभी तो पहचानना कठिन हो जाता है। सिनेमा हाल में परदे पर आपकी नजर है। कुर्सीपर आप हैं, बगल की कुर्सीपर एक दूसरे रईस सज्जन हैं, खेल जमा हुआ है, गाना सुननेमें आपको अपने हृदय का भी पता नहीं है। मध्यान्तर होने पर आप उठते हैं तो देखते हैं—बगल के रईस और हृदय के ऊपर का मनीबेग दोनों गायब।

आपने कई दिन चलकर बनारस में पैर रखा है, इसलिए आये हैं कि आपके पहले अन्य कोई स्वर्गका सस्तेवाला टिकट

न पा जाय। विश्वनाथ बाबा से भेंट होने के पहले ही आपकी एक सज्जन से भेंट हो गयी। आपको बातचीत से लगा कि आपकी अपनी श्रीमत्तीजी के भाई से ही मुलाकात हो गयी है। दूसरे दिन आप एक सड़क के चौराहे पर गाली मिश्रित रुदन में अपने अपरिचित सम्बन्धी की याद कर रहे हैं और लोग राह चलते हुए आपको भी अपना बहुमूल्य समय एक-एक मिनट देते जा रहे हैं। अन्त में न आप बनारस को समझ पाते हैं न अपने सामने खडे बीसियों बनारसियों को। सिर पकडे बैठे रह जाते हैं।

गाँधीजी को श्रद्धांजलि

गाँधीजी के स्वर्गवासका समाचार सुनते ही खदेरूकी माताजी ने कहा—

राम ! राम ! साधुओ-महातमाके मुँह फुँकवना मार डललें सब। दुनियाँ कवने रसातलमें जाई हे भगवान। वेचारू गान्हीजी सवके भलाई वदे जी देतै रह गइलैं। राम ! राम ! दुनिया भर क पाप देखके इस्सर उन्हें वोला लेहलैं।

सिटहल अफीमची ने समाचार सुनकर कहा—गांधीजी गाँजा, भाँग-अफीमकी बुराई करत रहे तो क्या, थे तो साधू और देवता। उनके जैसा महात्मा अब कौन रहा?

पण्डित सहदेव पहलवान नें कहा—गांधीजी वीर थे, वहादुर थे, नम्बर एक लड़न्त थे। उनकी जोड़का कोई दूसरा पहलवान क्या खाकर धरती पर होगा? उन्होंने अंग्रेजों को ऐसे दाँवसे अंटा-चित्त उठा पटका कि उनकी आई वाई पच गयी। गांधीजी जैसा पहलवान इस दुनिया में दूसरा न पैदा हुआ, न होगा।

सफेरू खाँ जुलाहाने कहा—अल्लाताला, यह तू ने क्या किया। गान्हीजी ने हम जुलाहों के लिए क्या नहीं किया। उन्होंने दुनिया को वता दिया कि जुलाहा वने विना दुनियाकी गुजर नहीं। ऐ खुदा, तूने हमारे सवसे वड़े जुलाहे विरादर को उठा लिया। हमारी तूने कमर तोड़ दी।

जलेवी वेचनेवाले मुक्खू हलवाई ने १३ दिन तक खोमचा न

लगानेका निश्चय करते हुए कहा कि हे परमात्मा, अपने दरबार में तू अब हमके भी बोला ले।

नगरपालिका के कर्मचारी और सुप्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्त्ता बुद्ध झाड़ू लगानेवाले ने कहा—गाधीजी हरिजनों मे सबसे बड़े थे। वे हम लोगों के सबसे बड़े चौधरी थे। उनके न रहने के बाद अब हम लोगोंकी रक्षा करनेवाला कोई न रहा।

पण्डित लछिमन पण्डा ने कहा कि गाधीजी सच्चे गुरु थे। बिना उनकी एक सलाह के गउरमेण्ट ससुरी ठप्प रहती थी। उन्हींका ई सब परताप है कि अब मन्दिरो मे सब कोई छोट बड़ घुस पावत हैं। जेहका वजहसे चार पैसा हमनीं क आमदनी बढ़ गयी। गाधीजी सब लोगों के लिए कुछ न कुछ कइलन।

सिद्धी मलाह ने कहा—गान्धीजी बहुत भारी मलाह थे। आज बरसों से वे मुलुककी नौका खे रहे थे। उनपर हम सब लोगों को घमण्ड है। अगर उनके हाथ मे देश की पतवार न रही होती तो अबतक मुलुक की नौका मॅझधार मे डूबती होती।

चिकित्सक शशि शेखर ने कहा है—

गाधीजी न तो नेता थे, न मसीहा थे, न साधु थे, न महात्मा थे। न वे कामेसी थे और न उपदेशक थे। वे दुनिया के सबसे बड़े चिकित्सक थे। उनकी चिकित्सा के कुछ अनुभवों से मैं कुछ आश्चर्य चकित हूँ। मिट्टीकी चिकित्सा के सम्बन्धमे खुद मैंने उनसे राय पूछी थी। मैंने उनसे जो जानकारी और चिकित्सा-प्रणाली हासिल की, दुनिया के अन्य किसी चिकित्सक ने मुझसे ऐसी अद्भुत चिकित्सा की कोई बात नहीं बतलायी। किसी को कुछ मालूम ही नहीं था। भोजन के सम्बन्ध में उनके सुझाओंपर अमल करने से खुद मेरा पीला शरीर लाल हो गया। संसार के सबसे बड़े चिकित्सक के स्वर्गवास से दुनिया बहुत दरिद्र हो गयी।

हलचली सिंह पत्रकार ने सिर्फ इतना ही कहा—दुनिया का सबसे बड़ा पत्रकार अब नहीं रहा।

बाबू चरणधर जमींदार ने कहा कि यद्यपि गांधीजी जमींदारी खत्म करने के पक्ष मे थे, फिर भी उनके भाषण को पढ़कर सुना देनेसे उस दिन मेरी मिल में चलनेवाली हड़ताल तोड़ दी गयी। गांधीजी वस्तुतः हम लोगों के शुभचिन्तक थे।

धरभरन किसान ने, जो तीन हलकी खेती करते हैं और कुछ पढ़े-लिखे हैं, जब गांधीजी के स्वर्गवास का समाचार सुना तो कलेजेपर हाथ रखकर जमीनपर बैठ गये। उन्हे बहुत चोट पहुँची; बोले—हमारा सबसे प्यारा खेतिहर अब नहीं रहा। हे भगवान् तूने यह वज्र क्यों गिराया? जिन्होंने अभी चार दिन पहले कहा कि भारत का असली राजा किसान है, क्या उन्हें हमारे बीच मे आज ही उठ जाना था?

काशी दशाश्वमेध घाटपर नहानेवाली एक बुढ़िया ने कहा—अच्छा होत भगवान्, तू उनकी जगह हमके मौत देहले होता!

एक तरकारी बेचनेवाली ने कहा—जे गान्ही जी के मरलेस ओकर सरबनास हो जाय। मुँहफुकोना क।

सेठजी के नाम के साथ-साथ सैकड़ों नाम स्मारकपर खुद जायँगे और सेठ जी के यश में जनता के लोग हिस्सा बँटा लेंगे। सेठजी को प्रस्ताव नापसन्द लगा। अब वे रुपया न देंगे। विचार यह है कि रुपया लगायें तो अकेले अमर हों।

बापूजी यह सब सुनकर बहुत दुःखी हुए, और उनकी आँखो मे अश्रु भर आये।

बापू ने कहा—बनारस शहर के मध्य से प्रति दिन रात को बहुत प्रकाश निकलकर आसमान मे फैलता है। ऐसा कई दिन से हो रहा है। यह कैसा प्रकाश है ?

मैंने शान्तिके साथ उत्तर दिया—देव, आपकी तेरही बीतने के पश्चात् बनारस मे प्रदर्शिनी शुरू हो गयी है। उसीका यह लक-दक प्रकाश आसमान मे छा जाता है, जिसे आप देखते हैं। टीनका घेरा देखते देखते लोग ऊब गये थे, अब संध्या-समय दिल-बहलाव करेंगे। आपके लिए रोते-रोते थक गये हैं, मन बहलाव चाहते हैं।

'मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं है। लोग प्रसन्न रहें, सुखी हों, इससे मुझे प्रसन्नता होगी।'—बापूने कहा—'यह तो बताओ कि अभी लोग सिरपर काली टोपी रखते हैं या नहीं ?'

मैंने विनम्र होकर उत्तर दिया—'अब लोग सफेद टोपी लगा रहे हैं। लोग सिरपर यमका प्रतीक उतारकर सफेद धवल लगाने लगे हैं, क्योंकि दिमाग से, खोपडी से कालापन दूर हो गया है।'

बातें बहुत देर तक होती रहीं। बापूने कहा—मुझे प्रार्थना-सभामें जानेके लिए देर हो रही है। ५ बजकर ५ मिनट हो गये। अब मुझे जाने दो। और हाँ, देखो पहले स्वर्गमे अखबार आता, था, अब नहीं आता। पूछना क्या बात है। अपने पत्रकी ४ प्रतियाँ

भेज दिया करो, एक मेरे लिए, एक बुद्ध, एक ईसा के लिए और एक अमरपुरीके वाचनालयमें रहेगी। तुम्हें बापूके आशीर्वाद !

मैंने बातचीत बन्द कर दी। ज्योंही मेरी बातचीत बन्द हुई, मैंने देखा कि मेरा भाँनजा मेरी आँख पर हथेली रखकर 'लघुपति लाघव लाजालाम—पतित पावन थीतालाम' का भजन गाते हुए मुझे जगा रहा है।

घड़ीमें ५ बजकर कई मिनट हो गये थे। सवेरा हो चला था। प्रभातफेरीका जुलूस बगल से गुजर रहा था।

अफवाहों की आँधी

अफवाहों का दुनिया में कोई महत्त्व नहीं, उनकी असली पोल का पता लगते ही हम-आप मुँह विचका लेते हैं, लेकिन जिस समय अफवाहों की आंधी आती है उस समय उनका महत्त्व बहुत अधिक हो जाता है। हम आप सभी उन्हीं की चर्चा में चूर रहते हैं।

सुभाष बाबू अब दुनिया में न रहे—यह एक बार नहीं, तीन तीन सौ बार छापा जा चुका है। फिर भी सुभाष बाबू दक्षिणी ध्रुव की तरह रहस्यमय हैं। सोचिये, इसी एक अफवाह की आँधी ने लोगों के दिलपर सुभाष बाबू की मृत्यु की छुरी कई बार फेरी। और यही वजह है अपनेराम ऐसी-वैसी अफवाहो पर मुसकरा भर देते हैं, दिल-दिमाग पर कोई विशेष प्रतिक्रिया नहीं होती।

इन्हीं अफवाहों के बल पर, हिटलर कई बार मरकर जी चुका है। यह गौरव भी तो किसी-किसी को ही प्राप्त होता है। सो कलियुग में पैदा होनेवाले इस रावण को गायब होते ही मिला। पूरा वर्ष भर भी न बीता, पता चला वह जापान में है, किसी ने कहा—नहीं, डेनमार्क की एक गुफा में है। कोई कहता है—अर्जनटाइना में मरा, फिर जर्मनी में प्रकट होकर जापान में मरा। जब कुछ लोगों को इनसे भी शान्ति मिलती न दीख पडी तब उडाया गया कि वह सन् १९४६ की जुलाई की अमुक तारीख को एकाएक प्रकट होगा और वर्तमान अंग्रेज प्रधानमन्त्री खुद अपने खड्ग से उसका वध करेंगे।

खुद अपने कविवर श्री सुमित्रानन्दन पन्त की ही बात लीजिये। काशी के अखबारों मे एक बार आपके स्वास्थ्य की बाबत यह निकला कि 'आपकी हालत चिन्ताजनक है,। थोड़े घण्टे ही हुए थे कि 'अमृत बाजार पत्रिका' मे निकला कि 'श्री पन्त अब इस अखण्ड हिन्दुस्तान में न रहे।' कला तो थी ही। कलाकारों ने झट पत्रकारी पर हाथ साफ कर दिया। खैरियत यह हुई कि पन्तजी का पता कम लोगों को ज्ञात था, अतः वे एक अप्रत्याशित भीड से बच गये। मौत से बचना तो निश्चित ही था।

नार्वे मे मेसन अर्नेस्ट नाम के एक साहब रहते थे। वे दुनिया में सबसे तेज दौड़ने वाले आदमी माने जाते थे। कहने वालों का कहना है कि उनके पहले न तो कोई उनके समान दौड़ने वाला हुआ था, न उनके समय मे ही कोई मौजूद था। उन्होंने एक बार मास्को से पेरिस तक दौड़ लगायी थी—सिर्फ १५ दिनों में। नदी-नाले पहाड़ों की दिक्कतों से बचते हुए हजारों मील की यात्रा उन्होंने की थी। अखबार वाले दाँत तले अँगुली दबाकर भी समाचार छापते चलते थे। दूसरी बार मेसन अर्नेस्ट कांस्टेंटिनोपुल से कलकत्ता और कलकत्ता से कांस्टेंटिनोपुल आने-जाने की होड़ में अव्वल आये थे। बस फिर क्या, संवाददाताओं से अबकी रहा न गया। किसी जगह निकला—अर्नेस्ट मर गये; कोई छापता—मेंसन अर्नेस्ट ३०० मील रोज उड़ते हैं। उन्हे ईश्वरीय शक्ति प्राप्त है। उनका पैर जमीन पर नहीं रहता। एक अमेरिकन अखबार मे तो पढ़ने वालों ने यह पढ़ा कि अर्नेस्ट साहब जब दैवी पङ्खों के सहारे आसमान मे उड़ रहे थे, तब उसके खास सवाददाता ने आँखें फाड़कर देखा था, मगर असल मे बात यह थी कि अर्नेस्ट साहब जमीन पर ही पैर रखकर प्रतिदिन ६५ मील की दूरी तै कर रहे थे।

रूस में एक बार अफवाह उड़ गयी कि मिस्टर इवानोई का चेहरा कुत्ते का है। आप मशहूर इंजीनियर थे। बात सभी सरकारी क्षेत्रों मे बन्दूक की गोली से जल्द पहुँची। देखते क्या हैं कि प्रातःकाल उनके कई इष्ट मित्र उनके घरपर उन्हें देखने के लिए आये हुए हैं। और ये इष्ट-मित्र वे ही थे जो दूर-दूर देशों से आकर रूस में रहते थे। पहले किसी ने इन्हे देखा न था, इवानोई की प्रशंसा सुन चुके थे। जब खुद इवानोई साहब उनके सामने आकर खडे हुए, तब उन्हें भीड़ से छुटकारा मिला। बात 'प्रावदा' के किसी संवाददाता ने छपा दी थी। सच यह था कि मिस्टर इवानोई को दूर से देखने पर उनका चेहरा कुत्ते की तरह ही दिखलायी पड़ता था।

इन्हीं अफवाहोंकी करामात है जो एक बार अपने लँगोटी बाबाके बारे में केवल यही सोचना बाकी रह गया था कि आखिर ये आदमीसे ईश्वर कैसे हुए। सन् १६२१ के दिन थे। बात चाहे जो रही हो, पर कहा जाता था कि सरकार गान्धीजीको जेलोंमें भी बन्द नहीं कर पाती। जब सन्तरी उन्हे सत्ताइस तालोंके भीतर बन्द कर आता है तब भी वे हँसते हुए बाहर मिलते हैं। गान्धीजी के सामने सबसे भीमकाय तोप दागी गयी तो उसके गोले गुलाब के फूल बन बनकर बिखर गये। कहनेवाल कहते है कि बापू में ऐसी कोई ताकत थी अवश्य, लेकिन जरा-सा भी कहीं इस ताकत का पता हमारे अफवाहों की आँधी उठानेवालों को लगा नहीं कि अखबारों के कालम काले हुए। ऐसी है अफवाहों की करामात!

सच, अफवाहों मे बहुत ताकत है। ऐटम बमसे शायद कुछ ही कम हो। पाकिस्तान की राजधानी मे दङ्गा हो गया है, यह समाचार सुनने भर की देर होगी कि अखण्ड हिन्दुस्तान की

ाजधानी में भी उसी क्षण वह प्रारम्भ हो जायगा, उधर पाकिस्तान ें भले ही दङ्गा न हुआ हो। अफवाहों का 'ईथर' आँख में बिल्कुल ाहीं, कान मे जल्द असर कर जाता है। अफवाहों की आँधी मन' से भी अधिक द्रुतगति रखती है।

अफवाहों के भी आविष्कारक होते हैं। अपने दिमागी कोठे े दिनरात 'एक्सपेरिमेण्ट' करते रहते हैं और कुछ न कुछ आविष्कार कर ही डालते हैं। अखवारों के दफ्तर में काम करने ाले विशेष दूत तो इस वस्तु के सबसे बड़े आविष्कारक करार दे दिये गये हैं। शब्दकोष के अतिरिक्त अफवाहों के इतिहास में उनका नाम विशेष आदर से लिया जा सकता है। किसी कम्पनी में दिन-दहाडे आग लगा देना बायें हाथ का खेल है। हाँ, खबरों का अभाव अवश्य कारण-स्वरूप उपस्थित होना चाहिये। समाचार छप गया कि अमुक चौमुहानी पर दो साँड़ लड़ पड़े, जिन्हें नगर के उच्चकोटि के साहित्यिकों ने अपनी पिस्तौल की आवाज से हटाया। मगर वहाँ ऐसी कोई बात नहीं थी। जवाब तलब हुआ। कलक्टर ने पूछा—'आखिर बात क्या है?' उसे तो आग लग गयी कि 'हे ईसा, किस साहित्यिक के पास पिस्तौल बिना लाइसेन्स पड़ी हुई है?' लेकिन बड़ी शान्ति के साथ फोन से प्रधान सम्पादक ने बतला दिया—कुछ नहीं, दो साहित्यिक झगड़ गये थे, एक तीसरे ने बीच-बचाव कर छुडा दिया। एक प्रगतिवादी था दूसरा छायावादी।

प्रेमी-प्रेमिकाओं की दुनिया में भी अफवाहों का कम महत्त्व नहीं है। किसी ने अफवाह उड़ा दी कि कुमारी.. . आज किसी कांग्रेसी का फोटो देख रही थीं। बस फिर क्या है, कामरेड चम्पतराय का शीशे-सा दिल चूर-चर हो उठा। हिटलर अब इवाब्रानसे कम, किसी दूसरी औरत से अधिक बातचीत करता

है, ऐसी बातें हवा की तरह बह उठती थीं। अफवाहों की आँधी का फायदा उठानेवाले अँगुली बराबर मोटे टाइपों मे सारी कारवाई छाप बैठे। घास ही तो है, फिर क्यो छोड़ना ?

सेठ सुखारीलाल की महासभा उनकी है, आप महासभा के हैं। उसके दुःख मे आप दुःखी होते हैं और वह आपके दुःख मे दुःखी होती है। आशिक-माशूका का-सा नाता रिश्ता है। फिर भी अफवाहों की आँधी है कि आप कांग्रेसी करार दे दिये गये। अन्त मे लाचार होकर आपको कांग्रेस की प्रशंसा मे अपनी देश-भक्ति का व्यर्थ ही परिचय देना पडा।

अभी गत लड़ाई की ही बात है। अपनेराम कइ बार केवल इसीलिए खाई मे छिप गये कि हवाई हमले की आशङ्का सिर पर आ सवार हुई। बिना भोंपू बोले ही, अफवाहों की ताकत लोगों का, शहर का दाना पानी छुडा चुकी थी। हवाई हमले का भूत सिर पर इसलिए सवार था कि अफवाह थी कि कलकत्ता मे रोज बम गिर रहे हैं, जब कि सचमुच सिर्फ दो बार ही बम वर्षा हुई थी।

विलायत की बात है—विशेष पुरानी भी नहीं, बिल्कुल नयी भी नहीं। वह यह कि किसी अखबारवाले को उस दिन सनसनी-खेज कोई भी समाचार नहीं मिला था, लेकिन कोई ऐसा समाचार देना जरूरी था। बस फिर क्या ? प्रातःकाल लोगों ने पढा कि नगर के प्रसिद्ध प्रोफेसर मिस्टर राबर्ट को पूँछ है जिसे वे पेट में से ही लेकर आये हैं। वे अपनी पूँछ पेटके नीचे रखते हैं। जनताको उन्हें दुमदार आदमी समझना चाहिये। जनता में जैसे आग लग गयी। सभी इस बात की चर्चा करने लगे। प्रोफेसर साहब को तो ऐसा लगा मानो किसी ने उनकी नाक काट ली हो। मानहानि के अपराध मे पत्र को ३ हजार पौण्ड जुर्माना

हुआ और अफवाह का खण्डन करना पड़ा। मगर हिसाब :
बताया गया कि इस समाचार को ठीक समय से छापने के कारा
अभी भी लगभग एक हजार पौण्ड का फायदा है। यह है अफवा
का करिश्मा!

खुद अपने ही मुहल्ले की बात लीजिये। मौलवी करीमबख्श
बड़े नेक आदमी हैं। उनका विचार था कि जब पाकिस्तान ब
जायगा तब भी वे काशी छो ़कर लाहौर नहीं जायँगे। अल्लाताल
ने सारी सुविधाएँ आपको दी हैं। मगर एक यही गड़बड़ है f
खुदा आपको एक साथ दो बच्चे हमेशा देता है। उस दिन जब ं
आफिस मे जाते समय उनके दरवाजे से गुजरा तो ठीक फाटक प
एक भीड़ लगी देखी। ज्ञात हुआ कि आप सब लोग इसलि
आये हुए हैं ताकि जरा करीमबख्श के उस बालक को देखें जिसरे
सटे हुए पाँच सिर भी पेट मे निकले हैं। मौलवी साहब के लाए
समझाने पर कि यह बात बिल्कुल गलत है बल्कि उन्हें तो अबकं
एक ही बच्चा हुआ है, लोग विश्वास नहीं कर रहे थे। बात यह
थी कि अफवाहों के किसी पण्डित ने अपनी कला का उपयोग क
दिया था।

आजकल अफवाहों का जमाना है। अखबार वाले उन्हें सबसे
सुन्दर स्थान देकर शीर्षक के आगे एक टेढी टाँग खड़ी कर देते
हैं, जिससे नीचे बिन्दु लगा रहता है। मतलब यह हो जाता है कि
अखबार वाला पढने के लिए ही छाप रहा है, समझने के लिए
नहीं—गौर करने के लिए तो बिल्कुल नहीं। लेकिन कभी कभ
लोग देखते ही भाँप लेते हैं कि यह खबर नहीं, बगुले की पाँख क
तरह सुफेद अफवाह है। जैसे यह कि कविवर हृदय विदारव
'शुष्क' के यहाँ जार्ज बर्नार्ड शा डेरा डाले हुए हैं या जार्ज माउण्ट

एवरेस्ट पर ब्रिटिश झण्डा खुद अपने हाथ से गाडने वाले हैं, आदि, आदि।

पाकिस्तान के सम्बन्ध मे कैसी अफवाहे उड़ायी जायँ, सुनते हैं, इस पर पत्रकारों ने विचार-विनिमय आरम्भ कर दिया है। कोई कहता है कि एक बार अफवाह उड़ायी जायगी कि अमुक मन्दिर रातों रात तोड़ डाला गया, पण्डित शशिशेखर तिवारी अब नमाज पढ़ते हैं। लेकिन किसी-किसी का इस प्रकार की अफवाह उड़ाने का विचार नहीं है, बल्कि अखबारों में इतना ही निकाल देना वे काफी समझते हैं—हिन्दुओं को अल्पसंख्यकों के सभी अधिकार मिल गये—जैसे वे भी बकरी रख सकते हैं, मुर्गा पाल सकते हैं, चरखा या तकली चला सकते हैं। हाँ, खद्दर पहनने के लिए विशेष मंजूरी लेनी होगी, आदि आदि।

और; इसी प्रकार सिनेमा संसार मे भी अफवाहों का महत्त्व बढ गया है या बढ़ जाएगा। अमुक फिल्म अभिनेता अब दाढी रखेंगे, क्योंकि उनकी प्रेमिका दाढी पसन्द करती है—यह दो वर्ष पूर्व की अफवाह है, जिससे फिल्म दर्शकों का मुँह बिचक गया था। अपनेराम को तो और किसी अफवाह की चिन्ता नहीं है, यदि चिन्ता किसी बात की है तो यही कि इस लेख को पढकर लोग इसे अफवाह न समझने लगें, क्योंकि अफवाह है कि आज कल सर्वत्र अफवाहों का जमाना है।

बेवकूफी की हद नहीं होती

लोग कहते हैं कि 'बेवकूफी की भी हद होती है।' मैं कहता हूँ बेवकूफी की हद नहीं होती। भला कहीं बेवकूफी की भी हद हो सकती है ? यह तो वैसी ही बात हुई जैसे कोई यह कहे कि हिमालय हिन्द के दक्खिन है या गोरखपुर मे मच्छर नहीं होते।

देश की स्वतन्त्रता बचाना बेवकूफी हो सकती है, मगर बेवकूफी की हद कैसे हो सकती है, यह समझ में नहीं आता। इससे बढ़कर भी बेवकूफी की जा सकती है और वह यह कि कोई कहे कि पाकिस्तान से अँगरेज चले जायँ।

अगर बेवकूफीकी हद होती तो सभी लोग कविता क्यों लिखने लगते, सभी नौजवान मार्क्स का नाम जपकर कामरेड क्यों बन जाते, या सभी लोग विधान-सभाओं में जाकर देशसेवा करने की क्यों चेष्टा करते ? सच पूछिये तो इसीसे पता चलता है कि बेवकूफी की हद होती ही नहीं। अपनेरामको यह ठीक-ठीक मालूम है कि एक बार कविवर निरालाने कहा था कि जिस दिन हिन्दी साहित्य मे सभी लोग 'प्रगतिशील' हो जायँगे, उसी दिन मैं यह मान लूँगा कि बेवकूफीकी भी हद होती है।

इसी प्रकार चुनाव में जमींदारों, तालुकेदारों, नवाबों का शौक से भाग लेना बेवकूफी की हद बिलकुल नहीं है, वह तो कुछ-कुछ तब है जब हैलेट या ऐसे ही किसी प्रिय शासक का स्मारक न बनवा दिया जाता।

बनारसी रईस होते हैं, यह तो बेवकूफी भी नहीं है फिर 'हद' का तो कोई सवाल नहीं उठता। मगर यह कैसे मान लिया

बेवकूफी की हद नहीं होती

लोग कहते हैं कि 'बेवकूफी की भी हद होती है।' मैं कहता हूँ बेवकूफी की हद नहीं होती। भला कहीं बेवकूफी की भी हद हो सकती है? यह तो वैसी ही बात हुई जैसे कोई यह कहे कि हिमालय हिन्द के दक्खिन है या गोरखपुर में मच्छर नहीं होते।

देश की स्वतन्त्रता बचाना बेवकूफी हो सकती है, मगर बेवकूफी की हद कैसे हो सकती है, यह समझ में नहीं आता। इससे बढ़कर भी बेवकूफी की जा सकती है और वह यह कि कोई कहे कि पाकिस्तान से अँगरेज चले जायँ।

अगर बेवकूफीकी हद होती तो सभी लोग कविता क्यों लिखने लगते, सभी नौजवान मार्क्स का नाम जपकर कामरेड क्यों बन जाते, या सभी लोग विधान-सभाओं में जाकर देशसेवा करने की क्यों चेष्टा करते? सच पूछिये तो इसीसे पता चलता है कि बेवकूफी की हद होती ही नहीं। अपनेरामको यह ठीक-ठीक मालूम है कि एक बार कविवर निरालाने कहा था कि जिस दिन हिन्दी साहित्य में सभी लोग 'प्रगतिशील' हो जायँगे, उसी दिन मैं यह मान लूँगा कि बेवकूफीकी भी हद होती है।

इसी प्रकार चुनाव में जमींदारों, तालुकेदारों, नवाबों का शौक से भाग लेना बेवकूफी की हद बिलकुल नहीं है, वह तो कुछ-कुछ तब है जब हैलेट या ऐसे ही किसी प्रिय शासक का स्मारक न बनवा दिया जाता।

बनारसी रईस होते हैं, यह तो बेवकूफी भी नहीं है फिर 'हद' का तो कोई सवाल नहीं उठता। मगर यह कैसे मान लिया

दोस्त-मित्रों में निकलते हैं तो देखनेवाले देखते हैं, साहित्यिक महाशय ने कई सुन्दर प्रसव किये हैं। मगर सच पूछिये तो इस प्रसव-पीड़ा का सारा मजा विना हिले डुले प्रकाशक लेते हैं। साहित्यिक और लेखक को समाधि लगानी थी, उसने अपना कर्तव्य पूरा किया, वह मजा क्या ले ? हाँ, बेवकूफी की हद उस दशा में अवश्य होती जब सर्वश्री सुमित्रानन्दन पन्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', मोहनलाल महतो 'वियोगी' प्रसव करने के बाद, समाधि के बाहर—प्रकट होते ही सर्वश्री यशपाल, बच्चन, रामनरेश त्रिपाठीकी तरह खुद किताबकी दूकान खोल लेते, जोतते-बोते-काटते और अपने जीते-जी प्रकाशकों को तड़पाकर मार डालते।

दुनिया में सबसे पुराना अखबार है चीन का पेकिङ्ग गजट। किसी चीज का पुराना होना उसकी बेवकूफी नहीं है, इतना तो खयाल रखें ही। यह अखबार पिछले एक हजार बरसों से भी अधिक समय से निकल रहा है। इसे उसकी विशेषता कहिये या जो कुछ। उसके बारे में लोगों की धारणा है कि अबतक उसके १०६७सम्पादक राजद्रोहके अपराध में सजा पा चुके हैं और सजाएँ भी ऐसी-वैसी नहीं, सब तरह की—जुर्माना, कैद, फाँसी। अब आप ही सोचिये, क्या यह बेवकूफी की हद है ? कभी नहीं। इस प्रकार की टेक को हम बेवकूफी मान सकते हैं, मगर बेवकूफी की हद कैसे मान सकते हैं ? अपने यहाँ के अखबारों को ही देखिये, बेवकूफी की हद को कौन कहे, बेवकूफी तक नहीं करते। भारतरक्षा विधान की, सच पूछिये तो, वे ही रक्षा करते हैं। यह वे अच्छी तरह जानते हैं कि यदि वे अच्छी बेवकूफी करने लगें तो १०६७ कौन कहे, १६७ सम्पादक भी सारा हिन्दी-जगत् खोज आने पर न मिलेंगे। हाँ, बेवकूफी की हद कुछ कुछ इस बात में अवश्य है कि वे भी कभी-कभी सभ्य सरकार को गाली दे लेते

हैं, कुछ लेखकों को पान खाने के लिए पैसा बाँट देते हैं, अपनी रोटी के लिए मालिकों से रुक रुककर जबान खोलते रहते हैं। यदि इन बातों में विशेष प्रगति आ जाय तो अवश्य बेवकूफीकी हद हो सकती है।

नये लेखक सम्पादकों के पास पत्र लिखें कि 'श्रीमान् सम्पादक महोदय ' ' यह हमारा प्रथम प्रयास है। इसे छापकर मुझे खुश करिये। मैं आपका यश गाया करूँगा।' आदि-आदि और सम्पादक महोदय उसे रद्दी की टोकरी मे डाल दें तो यह बेवकूफी की हद कैसे हो सकती है? बेवकूफी भी नहीं कही जा सकती। हाँ, तब बेवकूफी अवश्य होती, जब कोई नया लेखक सम्पादक के पवित्र आफिस के पास आता, फाटक पर यह दफ्ती लिखी न पाता कि 'अन्दर खाँसकर आना चाहिये।' 'बिना टिकट पाये रचनाएँ नहीं लौटायी जातीं।' 'कवियों की फोटो सस्ते रेट पर छपती है' आदि-आदि। यों भी मैं जब किसी सम्पादक के पास कैंची, जो उसका सबसे बडा हथियार है, बास्केट और झोला नहीं देखता, तब यही सोचता हूँ—क्या वे सम्पादन कर सकते होंगे? क्योंकि यह एक प्रकार की बेवकूफी है। फिर भी बेवकूफी की हद तो कदापि नहीं कही जा सकती।

अन्त मे मुझे फिर कहना पड़ रहा है कि बेवकूफी की हद नहीं होती। एक से एक, बडी से बड़ी बेवकूफियाँ की जा सकती हैं। बेवकूफियों के बल पर ही सारा ससार थमा है। यदि बेवकूफियों की हद करार दे दी जाय तो न जाने कितने साहित्यिकों, राजनीतिज्ञों और सुधारकों का हार्ट फेल हो जाय, कोई कहीं का न रहे। बेवकूफी बेहद, बे अन्दाज, बे-लगाम की जा सकती है, बशर्ते कि वैसी बेवकूफी करने वाला कोई हो। आप भी इस दिशामें प्रगति कीजिये और इससे निश्चिन्त रहिये कि बेवकूफी की हद भी होती है।

साहित्यिक ठग

यह तो आप जानते ही हैं कि किसी क्षेत्र में ठगों की कमी नहीं है। राजनीतिक क्षेत्र में जितने ठग हैं उनसे आज की दुनिया परेशान है। सामाजिक क्षेत्र के ठगो के कारनामे तो पूछिये ही नहीं, एक से एक महारथी हैं। रह गया साहित्यिक क्षेत्र, सो उसमें ठगों के मारे नाकोंदम हो गया है, जिधर देखिये, ठगों का बाजार गर्म है।

साहित्यिक ठगों की बनावट में कोई विशेषता नहीं होती। वैसे ही नाक-कान होते हैं जैसे हम सबके हैं, और अङ्ग भी हम सबके-से होते हैं। पोशाक भी वैसी ही रहती है—खद्दर और शिल्क की—जैसी हम सबकी होती है। चाल-ढाल भी लगभग हम लोगों की-सी ही होती है। लेकिन साहब, गजबका कमाल हासिल होता है इन लोगों को। मौका मिला नहीं कि कैंची से साफ कर लिया अपने दोस्त का भी माल। हमने सुना था कि कश्मीर में लोग अंगूर और फलों के खेतके-खेत चुरा लेते हैं, लेकिन अचरज तब हुआ जब एक साहित्यिक ठग ने बात ही बात में हमारी कहानी की सारी 'आयडिया' हड़प ली और उस सप्ताह ' नामक पत्र मे सचित्र कहानी छपकर निकल भी गयी। इतना ही नहीं, मौका लगा तो इस कदर हाथ साफ कर दिया कि पुस्तक की सारी कहानियों की खिचड़ी बनाकर दो-चार मास मे एक मजेकी फिल्म तैयार कर दी। इतने से भी सन्तोष न हुआ

संशोधककी। फिर क्या पूछना है ? नाम कमा लेने के लिए इतना काफी है। मान लीजिये, किसी मशहूर कविने कोई कविता लिखी है। किसी ठग कविकी आँखके सामने वह पड़ गयी। बस, फिर क्या है, झट उसी 'तर्ज' की दूसरी कविता भी तैयार है। रोनेवाली न सही, हँसनेवाली ही सही। ठग कवियो की पिछले साल जब गणना हुई तब पता चला कि बनिस्बत ठग लेखकों के ठग कवियो की संख्या अधिक है।

पत्रकारों पर कृपा कर यदि उन्हे भी साहित्यिकों में ले लिया जाय तो किसी को आपत्ति न होनी चाहिये, क्योंकि अब पत्रकारो का कार्य रायटर के तारों के अनुवादतक ही सीमित नहीं रह गया है। वे कवि होते हैं, लेखक होते हैं, साथ ही अपने ढङ्ग के साहित्यिक होते हैं। लेकिन इन मे कई सफल साहित्यिक ठग भी होते हैं। अमेरिका आदि मे साहित्यिक ठगों से बचने के लिए 'प्रेस एक्ट' का व्यवहार किया जाता है। और यही कारण है कि धडल्ले से पत्रकारों ने अपनी ठगी मे बहुत कुछ कमी कर दी है। सँभल-सँभल कर कदम बढाना पडता है। एक बार एक साहित्यिक पत्रकार-ठग ने पता लगाना चाहा कि यहाँ कितने ऐसे साहित्यिक हैं, जिनकी पुस्तकों का 'कापीराइट' रिजर्व नहीं है। सरकार ने इस ठग को सफेद घर भेज दिया। अब आप मजे मे समझ गये होंगे कि यह साहित्यिक ठग उन पुस्तकों से मसाले इकट्ठा कर मजे से अपना अखबार भरना चाहता था।

साहित्यक ठग किसी-किसी शरीफ साहित्यिक को एकदम खतम कर डालने की भी कोशिश करते हैं। शरीफ साहित्यिकों को अपनी पाण्डुलिपि से सावधान रहना चाहिये, पता नहीं वह कब किस ठग के हाथ लग जाय। फिर हाथ मलकर रह जाना पडेगा।

अभी पिछले दिनों मेरे एक मित्रके उपन्यासकी पाण्डुलिपि एक साहित्यिक ठग के हाथ लग गयी। वह लगभग आधी पुस्तककी नकल कर चुका था, जब उसे मेरे मित्रने यह दुस्साहस करते पकड़ा। साहित्यिक ठग कभी-कभी बहुत कमालका काम करते हैं। एक विदेशी साहित्यिक ठग ने एक बार एक पुस्तकालय की रातो-रात सफाई कर दी, केवल इसलिए कि उसे मनचाहे उपन्यास पुस्तकालय में रहते हुए भी 'लाइब्रेरियन' साहब नहीं देते थे।

एक साहित्यिक ठग महाशयकी अभी हालमें ही इसलिए अखबारों में चर्चा चल रही थी कि आपने अपनी एक रचना एक साथ कई पत्रोंमे भेज दी थी। सम्पादक बिगड़ खड़े हुए थे—'यह बहुत ही बुरा नियम है। या यों कहिये कि एक प्रकार से यह सुन्दर और शिष्ट ठगी है।' कविजी कह रहे थे—'हम एक ही रचना सभी जगह भेजेंगे, जिसे गरज हो छापे अन्यथा लौटा दे।' खैर, साहब, साहित्यिक ठगोंकी दुनियामें अभी वृद्धि ही होती जा रही है। कोई भी ऐसा साहित्यिक नहीं जो कुछ न कुछ ठगी का आश्रय लेकर काम न निकालना चाहता हो।

यों तो यह भी एक कला है, और कलाका सम्मान साहित्यिकों को करना भी चाहिये। फिर यह कहा भी नहीं जा सकता कि साहित्यिक ठग न हों। बीसवीं सदी में भी यदि साहित्यिक ठग न हुए तो कब और कहाँ होंगे?

जब मैं लीडर हो जाऊँगा

यह तो आप जान ही लीजिये कि मैं आदमी हूँ। आदमी? हाँ, आदमी—वैसा ही जैसा साधारणतः आदमी हुआ करते हैं। किन्तु मैं अब आदमी ही बनकर नहीं रहना चाहता। आप सोचेंगे, पशु बननेकी इच्छा होगी। सो भी नहीं। पशु बनकर क्या होगा? मुझे किसी सरकार मे काम करने की इच्छा नहीं, मुझे हल खींचने की लालसा नहीं, मुझे दुनिया मे उथल-पुथल करने की ख्वाहिश नहीं, और न मैं किसी दूसरे ढंगके नात्सीवाद को ही जन्म देना चाहता हूँ। मतलब यह कि मैं मनुष्य से पशु नहीं बनना चाहता। अब आप कहेंगे-आखिर बनना क्या चाहते हैं? देवता बनना चाहते होंगे? सो भी नहीं। देवता बनकर क्या होगा, जिसका न पृथ्वी से कोई ताल्लुक हो और न किसी साम्राज्य की परती धरती से? देवता बनना भी क्या कोई अच्छी बात है? देवता बनना तो मेरे विचार से कोरी मूर्खता है। देवता बन जानेपर विलायत कहाँ मिलेगा और फिर कहाँ मिलेंगे 'लीडर' 'संसार', 'पत्रिका' के चार बराबर पृष्ठ? सबसे बहुत दूर हो जाना होगा। अब आप सोचेंगे, आखिर मै बनना क्या चाहता हूँ। सो मुझसे ही सुन लीजिये। लीडर बनना चाहता हूँ! लीडर! वैसा ही लीडर जैसा अधिकतर हुआ करते है।

खैर, साहब किसी तरह यह तै हुआ कि मैं लीडर होना चाहता हूँ। फिर यदि मैं लीडर हो भी गया तो मैं करूँगा क्या-क्या, अब

यह तै करना है। सचमुच यह एक समस्या है। सो इसे भी क्यों न सोच लिया जाय ? तो हाँ, जब मैं लीडर बन जाऊँगा तो सर्व-प्रथम जो कार्य करूँगा वह होगा हिन्दुस्तानके सभी हिन्दी, अंग्रेजी पत्रोंमें वक्तव्य देनेका कार्य। मैं अपने सेक्रेटरी से (यह याद रहे कि मैं लीडर होते ही एक सेक्रेटरी रख लूँगा) कहूँगा—'खैर, कोई बात नहीं, सुबहके सात बजे हैं तो क्या ? अभी 'फाउण्टेन-पेन' हाथमें लो और जो कुछ मैं बोलता जाता हूँ लिखते चलो।' जब मेरा सेक्रेटरी वक्तव्य लिख चुकेगा तो मैं संशोधन करूँगा। वह वाक्य—'तो अब भारत विशेष दबाव बर्दाश्त न कर सकेगा।' मुझे काफी पसन्द आयेगा। उसके नीचे खुद मैं अपने हाथसे एक सीधी लकीर खींच दूंगा, जिसका यह अर्थ हुआ कि छापनेवाले 'पेपर' इस पक्तिको वक्तव्य का शीर्षक समझें। इतना कर चुकनेके बाद मेरा सेक्रेटरी मेरे वक्तव्यकी एक प्रति फाइलमें सुरक्षित रख विभिन्न पत्रोंमें भेज देगा। पत्रवाले मेरा वक्तव्य पाकर कितने खुश होंगे, यह इसी से जाना जा सकता है कि प्रतिद्वन्दी पत्र से पूर्व अपना अखबार निकाल देनेके लिए कई महत्त्वपूर्ण खबरों तक को छोड़ देंगे। जब वक्तव्य मुखपृष्ठ पर छप जायगा तब उसकी एक प्रति मैं इतनी लापरवाही से देखूँगा, गोया मैं अपना वक्तव्य छपा देखकर विशेष खुश नहीं हूँ, जैसे यह तो मेरा कर्तव्य ही था।

दूसरा कार्य मेरी नेतागिरीका यह होगा कि मैं अपने रहन-सहनका स्तर ऊँचा करूँगा, क्योंकि मुझे अन्य जगहोंमें बड़ोंके बीच आना-जाना पड़ेगा। एक कोड़ी खद्दरके कुर्ते तीन दर्जन टोपियाँ, एक दर्जन धोतियाँ, एक बण्डल रूमाल और प्रत्येक दिन बदलनेके लिए सात प्रकारकी चप्पलें आदि चीजें मुझे शीघ्र ही जुटा लेनी होंगी। थोड़े से पायजामे भी बनवाने पड़ेंगे। आठ-दस जवाहर जाकेट काफी होंगे। जाड़ेके लिए एक सफरी चादर तो

चाहिये ही। अरे, झोला या 'हैण्डबैग' जिसमे मेरे सेक्रेटरी का दफ्तर रहा करेगा, तो भूल ही रहा था। इसे ढोनेवाला तो मेरा सेक्रेटरी ही होगा।

खैर, जब इतनी चीजें जुट जायँगी तो घड़ी और फाउण्टेनपेन कुछ दिन बाद भी खरीदी जा सकती है। फाउण्टेनपेन स्वदेशी मिलना तो कठिन है, लेकिन किया क्या जाय ? विशुद्ध स्वदेशी तो सरकण्डेकी कलम ही हो सकती है, पर उसे किसी भी हालतमे पास रखना 'सोसाइटी' के बीच अपनी हँसी करना है। अब रहा, अपने भोजन-छाजन के व्यय का खर्च, सो विशेष चिन्ता का प्रश्न नहीं। वह तो कहीं भी एक छोटा-मोटा भाषण कर लेने के बाद प्राप्त किया जा सकता है। फलाहार करना ज्यादा अच्छा होगा। सुभीता भी रहेगा। कच्ची-पक्की में तो देर भी हो जाया करती है, किन्तु फलाहार तो दूकान से सीधे मेरे पास ही पहुँच जाया करेगा। इसी सिलसिले मे एक बात और। 'सोसाइटी' मे घुलने-मिलने के लिए यह भी आवश्यक होगा कि मैं प्रारम्भ से ही पार्टियों के निमन्त्रण पत्र स्वीकार करना प्रारम्भ कर दूँ। धीरे-धीरे लोगों से परिचय भी होता रहेगा और देशभक्ति की पढाई भी चलती रहेगी। परीक्षा तो बाद मे देनी होती है। फिर शुरू मे ही घबड़ाने की क्या बात ? साथ ही यह भी ख्याल रखना होगा कि एक ओर सरकारी अफसरों से परिचय और रिश्ता बढता रहे, दूसरी ओर यह कोशिश भी रहे कि जनता मुझे अपना सबसे बड़ा पथ प्रदर्शक समझे। अफसरों से परिचय और मिलने-जुलने की बात का तो सेक्रेटरी तक को भी पता न रहे तो अच्छा। अपनी मिल और कम्पनी का बारबार बढाने के अतिरिक्त घटाने का नाम लेना बेवकूफी ही होगी। कम्पनी और मिल को अपने रास्ते पर चलने देना होगा। साल भर मे एक बार उनकी आम-

दनी का कुछ हिस्सा 'कस्तूर-बा कोप' में या ऐसे ही किसी दूसरे राष्ट्रीय कोष मे जमा-कर दिया जाय तो, मैं समझता हूँ, मेरी प्रतिष्ठा पर कोई धव्वा न लगेगा; वल्कि वह बढ़ती ही जायगी।

इन सव व्यवस्थाओं के अतिरिक्त यह भी आवश्यक होगा कि दो-चार पत्रों के सञ्चालकों और सम्पादकों से सीधा सम्पर्क वना लिया जाय। इनके जरिये वहुत काम निकलेगा।

अव रहा तीसरा कार्य। वह यह कि मेरे कार्यक्रम मे हड़ताल कराने और मजदूरों के सम्बन्ध में भाषण करने का कार्य अधिक न रहेगा, साथ ही सतर्क रहना होगा कि अपनी मिल का कुछ भी नुकसान न हो। हड़ताल और लेक्चरों का ताँता किसी दूसरे नगर में वाँधना ज्यादा उपयुक्त होगा। जव तक काफी चखचख न हो जाय, किसी भी हड़ताल को खत्म कर देना, मैं जहाँ तक अन्दाज लगाता हूँ, नेतागीरी को धक्का देना होगा। मजदूरों को सुझाव दिया जाय कि उनका हड़ताल से थोड़ा नुकसान है अवश्य, किन्तु अन्त में फल वहुत मधुर मिलेगा। मिल-मालिकों को समझा दिया जाय कि मजदूरों को वड़ी बुरी हवा लग गयी है। इनका विना दमन किये काम चलने का नहीं, हमेशा से ऐसा ही होता आया है। वीच में अपना वक्तव्य भी रुक-रुककर छपवाते रहना होगा। यों वक्तव्य में भले ही कोई सुलझाव न हो लेकिन नेतागिरी को तो किसी कदर चोट न पहुँचेगी।

भाषण में यह ध्यान रखना होगा कि कोई ऐसी वात न निकल जाय जिसके परिणाम स्वरूप कई वर्ष जेल रह जाना पड़े। हाँ, ऐसी वातें वेतल्लुफी और धड़ेल्ले से कहनी होंगी जिनसे पाँच-छः मास जेल भी काट लेनी पड़े। पाँच-छ मास जेल हो आने से जरा तवीयत भी वहल जाती है और लीडरी भी चमक जाती है। पहली वार जव जेल जाऊँगा तो कुछ पुस्तकें भी लिखूँगा। उनमें से एक होगी 'पाकिस्तान की आवश्यकता' पर,

दूसरी होगी अछूतों की समस्या पर, तीसरी पुस्तक का नाम होगा 'अंग्रेजों को अभी ५ सौ वर्ष भारत में रहना क्यों आवश्यक था ?'

दो-एक छोटी मोटी किताबें और लिखूंगा—जैसे एक पुस्तक होगी 'हमारे चिरस्मरणीय जननायक'। इन पुस्तकों को लिखने के लिए अभी से मैं तैयारी भी कर रहा हूं। इसी से आप समझ सकते हैं कि मैं लीडर होने के पहले ही जेल जाने के लिए भी तैयार बैठा हूं।

सचमुच लीडरी का सुख जब-जब मैं सोचता हूं तब तब हृदय पुलकित हो उठता है। अब वह दिन जल्दी ही आनेवाला है जब मैं लीडर कहलाऊंगा। जनता मेरे इशारों पर नाचेगी। उसकी तकदीर का फैसला मैं करूंगा। जब चाहूंगा उसे भाषणों से सराबोर कर दूंगा जब चाहूंगा उसकी हथेली पर आ जाऊंगा।

कितने पत्रकार हे हे करते हुए मेरे पीछे चलेंगे, कितने सरकारी अफसर मेरी अभ्यर्थना दबे शब्दों में करेंगे, कितने एस० पी० मुझे बडे अदब से जेल के फाटक पर पहुँचाने जायेंगे। कोई मेरा फोटो लेकर कृतकृत्य होगा, कोई छाप कर, कोई बैठक में फ्रेम और शीशे में सजाकर।

जनता तो मेरे दर्शनों के लिए ही पागल रहेगी। कई बडे बडे लीडर और शासक मुझे देश की छाती पर रोडा समझेंगे, कितनी संस्थाएँ मुझसे ईर्ष्या करेंगी। मैं जब किसी के विरोध में वक्तव्य दे दूंगा तब उसका जवाब पुस्तकाकार दिया जायगा। हाँ, तो इन सब बातों में मुझे आनन्द भी कम नहीं आयेगा और तब मैं विह्वल होकर अपनी श्रीमती जी को भी सभा सोसाइटियों में ले जाया करूंगा।

लेकिन यह सब तब होगा, जब मैं लीडर हो जाऊंगा।

अखिल स्वर्गीय कवि-सम्मेलन

आज स्वर्ग में बड़ी भीड़ है। दूर-दूर से लोग जुटे हैं, जुटाये गये हैं। क्या कवि, क्या लेखक, क्या सम्पादक, क्या समालोचक—सभी अपना प्रतिनिधित्व का पिटारा लिये-दिये आ धमके हैं। बड़े-बड़े झोंटावाले कविता पुस्तक दबाये, खद्दर का कुरता, महीन धोती पहने, चप्पल चटकाते घूम रहे हैं। कोई नन्दन वन के किसी फूल की प्रशंसा में धड़ाधड़ तुक मिला रहा है, कोई सोचता है कि महाराज इन्द्र की ही प्रशंसा में क्यों न दो गीत लिख दिये जायँ। बैठ गया 'चान्स' तो कुछ नोट हाथ में आ जायँगे। नहीं तो अपना क्या बिगड़ता है। कोई सोचता है कि नारद की प्रशस्ति में यदि चन्द छन्दों का निर्माण हो जाय तो प्रचार में कोई कसर बाकी न रहे। एक कोने में बैठे एक महाशय सोच रहे थे कि अन्तर्राष्ट्रीय नेताओं की याद में कुछ सवैये सुना दिये जायँ तो सामयिक चीज होगी और लोगों को पसन्द भी आ जायगी। रेडियो के गुणगान में तो एक सज्जन ने एक ऐसी कविता तैयार भी कर ली थी। उक्त सज्जन गुनगुना रहे थे—'धन्य रेडियो राजा मेरे धन्य रेडियो राजा।' मतलब यह कि कवियों की टोली अस्त-व्यस्त घूम रही थी। भारतेन्दु बाबू ने स्वागताध्यक्ष का भार ग्रहण कर लिया था। और यही कारण था कि उनके स्वागत-सम्बन्धी प्रबन्ध में यह भी था कि जो कवि जब भी आ जायँ, उन्हें यथा-सम्भव नन्दनवन में ही ठहराया जाय।

क्योंकि वह स्थान कवियों के ठहरने के लिए बहुत ही उपयुक्त था। कवि लोग अलग-अलग कमरों में नौरियें-बँधने के साथ झाँक रहे थे और नारदजी के निरीक्षण में उनके जलपान आदि का प्रबन्ध हो रहा था। ब्रह्माजी की ओर से नारदजी इसलिए आये कि कहीं बीच में गड़बड़ी न हो। किसी को कोई शिकायत करने या लिखने का मौका न मिले। यह तो सभी जानते हैं कि भारतेन्दु बाबू कितनी आज़ाद तबीयत के इन्सान हैं। और यही कारण था कि स्वागत के कार्यों में रुकावट पड़ जाती थी। एक कवि महोदय को दिन के ठीक १२ बजे चाय नहीं मिली। आप बिगड़ खड़े हुए और लगे फटकार-फटकार कहने—यह तो सरासर अन्याय है कि इतनी दूर से बुलाकर हम लोगों के जलपान आदि का भी प्रबन्ध ठीक नहीं हो रहा है। इन्द्र महाराज के दरबार में भी यह दशा। इससे तो बढ़िया था भारतीय सम्मेलन। उस वक्त किसी प्रकार उक्त कलाकार महोदय को नारदजी ने 'हें-हें आदि की साकार कला से प्रभावित कर शान्त किया। लेकिन कुछ घण्टे बाद फिर वही मामला! एक दूसरे सज्जन ने सिगार की माँग की। सभी प्रबन्धक आश्चर्य में पड़ गये कि 'अब क्या किया जाय।' अनेक कठिनाइयों से सिगरेट मृत्युलोक के अमेरिका देश से मँगाया जा सका था। अब सिगार कहाँ से मँगाया जाय? खैर, जब कवि जी ने देखा कि मेरी इच्छित वस्तु को लेकर यहाँ लोग बड़ी विचित्र परिस्थिति में पड़ गये हैं तो वे चुप लगा गये। अन्त में नारदजी सिगार लेकर टपक ही तो पड़े। लोगों के चेहरे खिल उठे। प्रश्न इज्जत का था सो किसी प्रकार बच गयी। भारतेन्दु बाबू ने मस्ती के 'मूड' में नारदजी की पीठ ठोंक दी। लेकिन बाद में सकोच में गड़ गये कि अपने बड़े की पीठ ठोंककर उन्होंने अच्छा काम नहीं किया। कवि जी भी समझ गये कि नारदजी ही सिगरेट ला सके

हैं। दूसरा कौन एक घण्टे के भीतर मृत्युलोक से सिगार या सिगरेट ला देगा।

कवि-सम्मेलन की शोभा बढ़ाने के लिए बुलाये गये कवियों के अतिरिक्त और जितने साहित्यिक थे, उनके ठहरने का स्थान भी खूब था। ये लोग कवियों से अलग ठहराये गये थे। एक ओर पंडित शुक्ल बैठे कुछ सोच-विचार रहे थे। पता चला कि शुक्लजी यहाँ कभी न आते, लेकिन भारतेन्दु बाबू का निमंत्रण पत्र था इसलिए आना पडा। शुक्लजी को विशेष चिन्ता थी कि हमारे बाद मृत्युलोक मे हिन्दी की सेवा करने वाले जितने समालोचक हैं, सब चाहते हैं कि साहित्य-जगत मेरी ही धाक माने। ठोस काम कोई नहीं कर पा रहा है। शिवदान सिंह चौहान अलग ही रूस-रूस चिल्लाते हैं और प्रगतिशीलता के पीछे जी छोड़ कर पड़े हैं। उधर पण्डित बाजपेयी भी प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना में लगे हैं। फिर कोई रह भी तो नहीं ़ाता। 'साहित्य-सन्देश, वालों के प्रति आपको विश्वास तो है लेकिन वह अस्थिर सा है। शुक्लजी को इसकी और भी चिन्ता थी; कौन जाने आगे 'साहित्य-सन्देश' का रुख कैसा हो ?

द्विवेदी जी भी निमन्त्रण पर चले आये थे, क्या करते बुलाने वाले के प्रति जबरदस्त मोह था। पता चला कि उनके गाँव में जो स्मारक बनाया गया है, उसके प्रति उन्हें विशेष आकर्षण नहीं है। हाँ, स्मारक-स्थापित करनेवालों को 'धन्यवाद' अवश्य दे दिया। द्विवेदीजी का कहना है कि यदि ऐसा ही शहीदों और देश-भक्तों का स्मारक बन जाता तो देश के लिए एक नयी बात होती। श्रीगणेशशंकर विद्यार्थी के स्मारक की याद आप कर रहे थे। सम्पादकों की मण्डली मे कोई विशेष बात न मालूम हुई। जलपान के पहले एक बार चर्चा अवश्य छिड़ गयी थी कि मृत्युलोक के पत्रकारों

की वेतन-वृद्धि के मामले के प्रति हम सबकी सहानुभूति होनी चाहिये। कानपुर वाले हिन्दी-पत्रकार-सम्मेलन के समाचार पर बड़े जोरों की बहस भी हुई। तै पाया कि स्वर्ग-समाचार में एक टिप्पणी लिखी जाय और वेतन-वृद्धि के प्रश्न पर प्रकाश डाला जाय। कुछ लोग लगे झगड़ने कि बिना सचालक इन्द्र महाराज से पूछे ऐसा न किया जाय, वह बुरा मान गये तो आफत हो जायगी। फिर बातचीत की धारा बदल गयी। एक नवागत कवि को याद पड़ गया रेडियो-आन्दोलन, फिर क्या था, कोई हिन्दी साहित्य सम्मेलन की तारीफ करने लगा, कोई रेडियो की, और चल पड़ी चख-चख।

इतने में नारद भगवान प्रबन्ध के सिलसिले में आ धमके। तै पाया कि भोजन के बाद कवि-सम्मेलन की काररवाई शुरू की जाय। कुछ लोगों ने इस नियम का विरोध भी किया। गानेवाले या यों कहिये गलेबाज कवियों का कहना था कि कवि-सम्मेलन के बाद भोजन करना ठीक होगा। बात यह थी कि ऐसे कवि पहले चुअना कण्ठाल भर लें तो उनकी सारी कला भ्रष्ट हो जाय और गलेबाजी हो ही न सके। किन्तु यही तै हुआ कि सब लोग भोजन करके ही चलें। सुबह तक बिना खाये-पिये कौन माई का लाल बैठा रहेगा। सुननेवालों का क्या? वे तो बैठे ही रहेंगे। उन्हें तो जन्म-जन्म के लिए कानों के रन्ध्र सरस बनाने हैं।

किसी तरह ६ बजकर ९ मिनट पर कवि-सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। सभापति का आसन ग्रहण किया पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी ने। कुछ लोग श्री जयशंकर 'प्रसाद' को घसीटना चाहते थे। लेकिन उन्होंने अस्वीकार कर दिया। वह तो शुरू से ही सभा-सोसाइटियों से दूर रहते आये हैं। सभापति के आसन पर आ विराजने के पश्चात् एक लम्बी पुष्पमाला पहनायी गयी।

फिर माइक्रोफोन को कुछ सामने खींचकर स्वर्गवासी जनता की ओर मुँह कर भारतेन्दु बाबू खड़े हो गये अपना स्वागत-भाषण पढ़ने। भाषण के ऊपरी भाग में मोटे-मोटे टाइपों में छपा था—

महाराज इन्द्र की प्रेरणा के फलस्वरूप और उन्हीं के द्वारा संयोजित अखिल स्वर्गीय कवि-सम्मेलन में समागत सुकवियों का स्वागत और अभिनन्दन।

भारतेन्दु बाबू ने यों पढ़ना शुरू किया—

आदरणीय सुकविगण,

इस अखिल स्वर्गीय कवि-सम्मेलन की स्वागत समिति की ओर से आप सब साहित्य मन्दिर के अनुरक्त पुजारियों का पूजन करते मुझे अपरम्पार रास-विलास का अनुभव हो रहा है। मैं इसे अपना अहोभाग्य मानता हूँ कि आप सब विशिष्ट विद्वानों के स्वागत का यह अपूर्व अवसर मुझे प्राप्त हो सका।

आप सब अपनी वाणी और लेखनी द्वारा साहित्य और स्वर्ग की जो सेवा कर चुके हैं उसके आभार से कौन मुक्त हो सकता है? आप मृत्यु-लोक में तो अमर हैं ही, स्वर्ग में आकर युग-युग के लिए अमर हो गये। आपकी कृतियाँ सर्वदा अमर रहेंगी। हिन्दी भाषा के निर्माण और साहित्य के सप्राण बनाने में आप ही लोगों का कर-कमल विशेष रूप से भाग ले चुका है। आप ही ऐसे महान कलाकारों के प्रयत्न का फल है कि मृत्यु-लोक में इतने सम्पादक, लेखक, कवि केवल अपनी लेखनी के बल पर अपना पेट भर रहे हैं। आप लोगो के ही परिश्रम का पारिश्रमिक है कि आज हिन्दुस्तानी वाले भी काँप उठे हैं। आप लोगों के ही वरदान और आशीर्वाद से आज हिन्दी राष्ट्रभाषा के गौरवपूर्ण पद की अधिकारिणी प्रमाणित हो सकी है।

कवि ही किसी राष्ट्र के, चाहे वह स्वर्ग में हों या मृत्युकोल

मे, स्वतन्त्र हो या परतन्त्र—अभ्युदय के मूल कारण हैं। जितने भी सामाजिक या राष्ट्रीय अभ्युदय के कार्य हुए है या होते हैं, सबके मूल में कवि का सहयोग, सत्प्रयत्न और आशीर्वाद विराजमान रहता है।

यह नन्दनवन तो आप लोगों के स्नेह का अधिकारी है ही, हम भी आपके स्नेह भाजन होकर आज अपने को गौरवान्वित समझते हैं। हमे पूर्ण विश्वास है कि आप हमारे ऊपर सदैव दयाभाव रखकर हमारे हिन्दी साहित्य की सेवा करते रहेंगे।

मैं पुनः स्वागत-समिति की ओर से तथा स्वयं व्यक्तिगत रूप मे आपका हृदय से स्वागत करता हूँ।

आपका

हरिश्चन्द्र

स्वागत-भाषण के पश्चात् कुछ नन्दन वन के स्थानीय या यों कहिये कि इन्द्र महाराज के दरबारी कवि कविता सुनाने लगे। द्विवेदी जी एक के बाद एक नाम धड़ाधड़ बोलते, उधर कवि जी कविता सुनाते। ताली पिटती। फिर कविजी यथा-स्थान आकर बैठते। यह क्रम लगातार एक घण्टे चला तब कहीं जाकर 'रसखान' का नाम आया। फिर क्या था, ताली खूब बजी। सुरीले स्वर में सवैया और कवित्त कहकर रसखानजी बाजी मार ले गये। पिछले कवियों के परिश्रम पर जैसे पानी फिर गया। इतने में एक श्रोता महोदय पदक की घोषणा करने लगे। सभापति ने बडे सयत भाषण के पश्चात् उक्त श्रोता को समझाया कि यह कवियों का एक प्रकार से अपमान है। आपको पदक देना था तो सम्मेलन मे ही लेते आना था। यहाँ पदक घोषणा हो

जाय और कवि को बाद में टापना पड़े, यह उपयुक्त नहीं। श्रोता सज्जन चुप बैठ गये। इन्द्र भगवान ने स्वर्ग की इज्जत सँभाल ली और अपना एक उपहार रसखान जी को भेंट किया। कारर-वाई आगे बढ़ी।

सूरदासजी ने कुछ लोगों के सुना लेने के पश्चात् एक गीत सुनाया। पसन्द किया गया, गानेवालों की बिना संकोच और झिझक विजय स्वीकार कर ली जाती थी, गोसाईंजी ने रामायण का श्लोक सुना कर कर्तव्य पालन कर दिया, उन्हें कवि सम्मेलन में भाग तो लेना था नहीं, द्विवेदी जी पर स्नेह था, इसलिए प्रार्थना स्वीकार कर ली। द्विवेदीजी को बार-बार इन कवियों का नाम लेते संकोच होता था, क्योंकि वहाँ उनके लिए गोसाईंजी से लेकर भारतेन्दुजी तक सभी आदरणीय थे, लेकिन बिचारे क्या करते? जब किसी ने सभापतित्व स्वीकार न किया तो स्वयं बैठ गये।

देव ने भी कई सुन्दर कवित्त सुनाये।

केशवजी की विद्वता से श्रोता प्रभावित तो बहुत हुए; किन्तु थोड़ी ही देर में ऊब गये, जब तालियाँ बजनी बन्द हो गयीं तो उन्हें उठ जाना पड़ा। 'कबीर' महाराज की आकृति और वेषभूषा देख कर कितने लोग हँसने लगे। किसी ने सोचा, होंगे कोई हास्यरस के कवि। कोई सोचता, आ गये होंगे कहीं से भारतेन्दु बाबू के चंगुल में। कवि को क्या पता कि श्रोता पोशाक भी देखते हैं। कबीरजी के दो-एक भजन सुनने के पश्चात्, बड़े बूढ़े तारीफ के पुल बाँधने लगे। हुल्लड़ भी बन्द हो गया, बीच में कुछ उदीय-मान कविगण भी आये, सुना कर चलते बने।

अब 'भूषण' की बारी थी। खूब गरज-गरज कर कविताएँ सुनायीं, पण्डित रामचन्द्र शुक्ल को अपने काशी के पण्डित पाण्डेय की याद आ गयी, इतने में ही द्विवेदीजी ने शुक्लजी का नाम पुकारा। पण्डितजी तो सुनकर सन्न रह गये। लगे हाथ जोड़-जोड़ चिरौरी करने। अन्त में द्विवेदीजी ने माइक्रोफोन अपनी ओर खींच कर जनता को सूचित किया कि शुक्लजी कभी कविता में लिखा करते थे, अब नहीं लिखते। उन्हें समालोचक ही बने रहने दिया जाय।

मृत्युलोक से आये हुए कुछ नये कवियों ने आशुकवित्व भी दिखलाया। तत्पश्चात् जनता हास्यरस के कवियों की माँग करने लगी। किन्तु हास्यरस का कोई भी कवि वहाँ उपस्थित न था। सब लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। हाँ, कुछ लेखक थे। एक ओर श्री नवजादिकलाल श्रीवास्तव बैठे मुसकरा रहे थे। इसी पशोपेश में संयोजक से लेकर सभापति तक पड़े थे। जनता बार-बार 'हास्यरस-हास्यरस' की रट लगाये थी। एकाएक द्विवेदी जी ने जनता को शुभ सूचना दी कि अब महाकवि चच्चा अपनी हास्यरस की रचना आपके सम्मुख प्रस्तुत करेंगे। आप यहाँ केवल अपने कानों को सरस करने के लिए पधारे थे, किन्तु आपकी सहृदयता है कि आपने आप लोगों की उत्कट अभिलाषा जानकर हास्यरस की कविता सुनाना स्वीकार कर लिया। कविवर चच्चा की कविताएँ खूब पसन्द की गयीं। खूब कहकहा लगा। हाँ, कुछ श्रोताओं को जिनमें 'सेन्स आफ ह्यूमर' नहीं है, कविताएँ हँसा न सकीं। वह तो बाजारू चीजें चाहते रहे। फिर कैसे पसन्द आतीं। अब 'प्रसाद' जी का नाम पुकारा गया। प्रेमचन्दजी के साथ होनेवाली बातचीत का सिलसिला तोड़कर

उठ खड़े हुए और 'आँसू' के छन्द सुनाने लगे। जनता आनंद-विभोर हो गयी। हँसी के बाद रुदन। बहुत प्रशंसा हुई। कुछ अन्य लोगों के सुना लेने के पश्चात् स्वयं सभापति ने भी अपनी रचनाएँ सुना दीं। धन्यवाद के पश्चात् कवि-सम्मेलन ज्योंही समाप्त हुआ, मेरी नींद टूट गयी। पानी के नल का भोंपू बज चुका। देखा, सिर पर भाई हाईस्कूल की तैयारी में जोर-जोर से संस्कृत रट रहा है और सड़क पर कोई गा रहा है—

होली है आज, अबीर गुलाल परैगो।

कवि-सम्मेलन

कांग्रेस के लिए जितना आवश्यक 'सुराज' था, लीग के लिए जितना आवश्यक 'पाकिस्तान था और ब्रिटेन के जितना आवश्यक भारत था , उससे कहीं अधिक आवश्यक कवियों के लिए कवि-सम्मेलन है। उसके बिना न कवियो का दिन सरस होता है न उन लोगो का, जो ऐसे मौके की ताक मे रहते हैं कि कहीं आस-पास उनके मनोरंजन के लिए कोई जलसा या उत्सव हो। और शायद यही कारण है कि आज प्रगतिशीलता के जमाने में कवि-सम्मेलनो का संख्या मे भी प्रगतिशीलता आ गया है, चाहे कवि-सम्मेलनों मे यह प्रगतिशीलता भले ही न आयी हो।

बाबू साहब के घर मे बडी धूम-धाम है। भीतर बाहर बढिया सजावट हो रही है। सर्वत्र निमंत्रण बडे जोरों से भेजे जा रहे हैं। पुत्रोत्पत्ति की खुशी मे आज शामको एक वृहत् कवि सम्मेलन होगा।

प्रदर्शिनी की तैयारियाँ हो रही हैं। कहीं चिडियाखाने के पशु, कहीं दुकानें, कहीं थियेटर। एक ओर कवि-सम्मेलन का पण्डाल बना है। बडे-बडे कवि जुटे हैं। शाम होते ही एक ओर जानवर बोल रहे हैं और बाजे बज रहे हैं और ठीक दूसरी ओर कविता-पाठ हो रहा है।

आखिर यह कवि-सम्मेलन है किस चिड़िया का नाम। यह किसी चिडिया से कम भी नहीं है। आज यहाँ तो कल वहाँ।

तो क्या इसे चिड़ियों की भाँति उड़ाया भी जा सकता है? अवश्य। चुटकियों के बल पर। भला उस साहित्य को जिसपर राष्ट्रभाषा हिन्दी सपने के महल बना रही है, कवि-सम्मेलनों में आलाप-प्रलाप की वस्तु बन जाने दिया जाय, हा-हा-ही-ही में समाप्त कर मनोरञ्जन का साधन मात्र बना दिया जाय? शायद ये बातें भी कुछ लोगों को खटकती हों। यही कुछ लोग कवि-सम्मेलनों के 'आशिक' हैं।

मान लीजिये आप कवि सम्मेलनों के कवि हैं। जब आप कविता सुनाने लगते हैं तो एक बड़ी सुरीली आवाज पण्डाल के भीतर गूँजती हुई आसपास फैल कर लोगों को स्तब्ध कर देती है, लोग मंत्र-मुग्ध-से हो जाते हैं। और कविता से कहीं आपकी सुरीली आवाज को समझने और पहचानने लगते हैं। फिर जब आपकी कविता समाप्त होती है तब तालियों की ऐसी गड़गड़ाहट होती है कि आप पुलकायमान हो जाते हैं। इस दृश्य के बाद आप यह गाँठ बाँध लीजिये कि आपने मैदान मार लिया। अब आपके पास निमंत्रणों का ताँता लगा रहेगा। यदि मार्ग-व्यय भी मिलने लगा तो फिर आसमान पर पाँव समझिये। आप झटपट कवि-सम्मेलनों के उत्सव में गाड़ी की भीड़ का कष्ट और भाँति भाँति की बाधाएँ एक ओर ढकेल कर शरीक होने लगेंगे।

एक और मजेदार बात। यदि कहीं आपने कवि-सम्मेलनों में कुछ नाम कमा लिया तो फिर क्या पूछना? आपका रेट बँध जायगा।

लेखक ने सम्मेलन समाप्त हो जाने के बाद कवि-सम्मेलनों के संयोजकों से कवियों को झगड़ते देखा है। कोई कहता है—'मैं १०१) लिये बिना प्रोफेसरी छोड़कर कहीं जाता ही नहीं।' कोई कहता

है—'साहब, गाडी किराया ही दे दीजिये' और किसी प्रकार संयोजक बेचारे पिण्ड छुडाते हैं।

अभी थोडे दिनों की बात है। एक शहर के लोगो ने इसलिए एक विराट कवि-सम्मेलन किया कि आय का बचा भाग जर्जर प्रान्त बंगाल भेज दिया जायगा। कवि-सम्मेलन बड़ी धूम-धाम से हुआ। २०००) की आय हुई थी और १९५०) का व्यय। पता नहीं लाभ के शेष ५० बगाल भेजे गये या पिकनिक में समाप्त हो गये।

इस तरह कवि-सम्मेलन की आँधी कब तक चलती है, कवियों को देखना चाहिये।

सरपटवादी साहित्य-सम्मेलन

जब मैं मञ्च के पास पहुँचा तब भीड़ इतनी अधिक इकट्ठी हो गयी थी कि लाउडस्पीकर के खम्भे टेढ़े हो गये। कई खम्भे धरती से ३० अंश का कोण बना चुके थे। एक सज्जन अपनी पीठ से सीढ़ी लगाकर हर जगह खड़े हो जाते थे, दूसरे सज्जन (या दुर्जन) पीठ से सटी सीढ़ी पर चढ़ जाते थे; खुटखुट और ध्वनि-विस्तारक-यन्त्र ठीक कर देते थे। फुर्ती से काम हो रहा था। मञ्चके समीप रखी हुई फूलों की माला को पास के बैठे दो बालक इसलिए नोच रहे थे कि काम की कमी के कारण उन्हें जँभाई आ रही थी। संकीर्तन-मण्डली के प्रसिद्ध गायनाचार्य सेवकजी एक कपड़े की माला लिये खड़े थे। बहुत देर तक यों ही खड़े रहने के कारण उनके मुँह सरलता से खुले हुए थे। एक सज्जन के गाल सामने की धूप से लाल हो गये थे। मैंने भी चाकू से अपनी पेंसिल बनायी। बैठ गया।

नेताजी के आने में देर हो गयी। उद्घाटन का भाषण वही पढ़नेवाले थे। ऐसे तो पण्डित शिशिरकुमार मेहता का राजनीति में ही नहीं, साहित्य में भी हाथ है, मगर हम सब उन्हें नेता ही समझते हैं। आते ही सभा में 'चुप रहिये' 'चुप रहिये' की आवाज शुरू हो गयी। कुछ लोग कह रहे थे—'आ गये' 'आ गये'। सबका तात्पर्य यह था कि अब शान्ति छा जाय। मगर बेहया शान्ति भाग गयी थी। सभापति थे पण्डित रा० पी० कुड़-मुड़कर।

चुपचाप बैठे ताक रहे थे। कभी अपने आगे लेटर-पैड को देखते थे, कभी घडी को। जनता उन्हे आँखों से पी रही थी। उद्घाटन-भाषण प्रारम्भ हुआ।

'भाइयो, बहनों, जानते ही हैं कि हिन्दी को अब एवरेस्ट पर चढाया जा रहा है, आप यह भी जानते हैं कि उर्दू के हमारे भाई भी हमारी तरक्को चाहते हैं, और आप यह भी जानते हैं कि हिन्दी का दिन लौट रहा है, फिर इतने बड़े आयोजनकी कोई आवश्यकता नहीं थी। हिन्दी अब राजभाषा है। वह सबके सिरपर सवार हो गयी है। उसकी रक्षाके लिए चिन्ता करना बेकार है। उसमें भ्रांति-प्रिय, शान्ति-प्रिय, क्रान्ति-प्रिय लेखक मोजूद हैं। हिन्दी मे गाली देनेवाले भी कम लेखक नहीं है, हिन्दीमे चिकोटी काटनेवाले लेखकों की तादाद दर्जन के करीब है।

हिन्दी में 'फोन सप्तक' के लिखने वाले आज भी मौजूद हैं, हिन्दी में ही राहुलजी ने त्रिपिटक लिखा है, हिन्दी में ही नागरी-प्रचारिणी जैसी संस्थाएँ हैं, हिन्दी को अब बनारस म्युनिस्पलबोर्ड भी सम्मानित करने लगा है। हिन्दी मे ही . छपता है और हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है, जिसमे कविवर बेढब बनारसी और श्री बेधड़क बनारसी ने लिखना पसन्द किया। हिन्दी भाषा एक ऐसी भाषा है जिसमें चर्चिल तक की प्रशंसा की गयी है, जिना साहब तक को पत्र लिखा गया है। आपको जानकर प्रसन्नता होगी कि हिटलर की मृत्युके बाद जब उसकी डायरी खोली गयी तो पता चला कि वह अपनी डायरी हिन्दी में ही लिखता था और उसने दुनिया विजित कर सभी देशों को हिन्दी में ही सारा कार्य करने के लिए बाध्य करने का विचार कर रहा था। हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है, जिसमें श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी ने समालोचना लिखी है और श्री अमृतराय 'हंस' निकाल रहे हैं।

एक आजाद हिन्द-फौजी के मुख से ज्ञात हुआ है कि नेताजी जल्द ही स्वदेश लौटेंगे और आप सबसे पहला भाषण हिन्दी में करेंगे।

अब मुझे थोड़ा साहित्य के सरपट-वाद पर कहना है। साहित्य में जब से यह वाद आया है-'कम्युनिस्टों की आत्महत्या' की संख्या में कमी आ गयी है। भाषा में सुधार हो चला है। कई 'मासिक' निकलने लगे हैं।

अन्त में मैं सभापतिजी श्री कुड़मुड़कर से भाषण की प्रार्थना करूँगा और स्वतः विश्राम का अवसर लूँगा।

उद्घाटनोत्सव के भाषण में कई जगह 'चुप-चुप' की ध्वनि होती रही। संयोजकजी कह रहे थे—'अरे रे, ससुरा भाषण के बीच भी चिल्लात बाटैं।' एक ओर से आवाज आयी—'सायलेण्ट, सायलेण्ट प्लीज।' जनता की तादाद २५ हजार रही होगी। सभापति ने स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण दो तीन बातें ही कहीं और जी छुड़ा लिया।

पहली बात यह कि हम साहित्यिकों को चाहियें कि एक ऐसा भवन अवश्य बनायें, जिसमें हिन्दी के सभी लेखकों की मृत्यु के बाद एक कमरे में उनकी कलम-दावात रखी जाय। दूसरा सुझाव यह था कि प्रत्येक साहित्यिक की खोपड़ी जुटायी जाय। उसे सुरक्षित रखा जाय। जब भारत में समाजवादी या साम्यवादी सरकार बन जायगी, तब इन खोपड़ियों का अध्ययन कर छात्र साहित्यिकता का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। तीसरी बात जो सभापतिजी ने कही, वह यह है कि सरपटवादी साहित्यकारों को खद्दर का कुरता, जिसका कालर उठा हुआ हो, पहनना चाहिये। छाती पर पाकिट बना रहे, जिस पर 'स० सा०' लिखा रहे।

सरपटवादी साहित्यकारों को अपने सम्बन्ध में ऊँची धारणाएँ बनानी चाहिये। आदि-आदि। कुछ लोगों ने सरपटवादी साहित्य के उचित प्रकाशन के लिए काशी की एक मासिक पत्रिका को थैली भेंट की, जिसमें छेद वाला १०८ पैसा था और प्रत्येक दो पैसों के बीच एक छुहारा लगा हुआ था। मन्त्री, सरपट-वादिनी-परिषद तथा सरपटवादिक संघ ने मेहताजी को अभिनन्दन पत्र दिया। अभिनन्दन-पत्र हाथ के कागज पर न होकर रूस के बने कागज पर था। दो सितारे उसके ऊपर-नीचे फ्रेम में जड़े थे।

इसके पश्चात् उर्दू के लेखकों की ओर से कविवर 'सिफारिश' ने 'मेल-मुहब्बत' शीर्षक निबन्ध पढ़ा और कहा कि हिन्दी के साहित्यकारों को कभी-कभी हमें भी पीछे देखकर जोह लेना चाहिये। अकेले उनके डर जाने का भय है। चलने के समय सभा की समाप्ति के बाद मुझे एक फाउन्टेनपेन गिरा पड़ा मिला। (जिसका हो वे चीफ रिपोर्टर बनारस से शिनाख्त देकर ले जायँ।)

संयोजकजी ने सर्वप्रथम स्वयंसेवकों को धन्यवाद दिया, क्योंकि उन्हीं की वजह से सभापति जी, दुबले-पतले व्यक्ति, दबते-दबते बच गये थे। बाद में उन्होंने लाउडस्पीकर वालों को धन्यवाद दिया कि लाउडस्पीकर अन्त तक फेल नहीं हुआ। पश्चात् संयोजकजी ने हम अखबारवालों को धन्यवाद दिया कि ये सबके सब उपस्थित हैं, जिससे सम्मेलन का उचित प्रचार किया जा सकेगा, पत्रकारों के पश्चात् पण्डालवाले को धन्यवाद देना जरूरी समझा गया और कहा गया कि उन्हीं की कृपा से हम सब लोग सुरक्षित धूप में बैठे रह गये। यदि पण्डालवाले सतर्क न रहे होते तो यह तै था कि कई हजार की संख्या में जनता

दब गयी होती। अन्त में दोनों आगन्तुकों को धन्यवाद इसलिए दिया गया कि यदि वे उपस्थित न हुए होते तो इतनी भीड़ ही न इकट्ठी हुई होती और अखबार वाले छाप देते कि सरपटवादियों का जनता पर तनिक भी प्रभाव नहीं है।

सायकिल की हवा किसी ने निकाल दी थी, इसलिए उसे ढकेलता हुआ पैदल ही प्रेस आया। इस समारोह में जनता ने बहुत ही उत्साह से भाग लिया था। पत्रकारों को जलपान कराया गया।.. मुफ्त रिपोर्टर को २७ चमचम खिलाये गये।

[निबन्ध पाठ]

आज.. प्रातःकाल ८ बजे से ११ बजे तक श्री प्रभातचन्द 'सुनहला' के सभापतित्व में निबन्ध-पाठ का आयोजन था। श्री पराठेचरण वाजपेयी ने 'आधुनिक कथा-साहित्य में 'मेला-घुमनी' पर अपना विवेचनात्मक निबन्ध पढ़ा। पसन्द किया गया। 'लुरखुर भौंड़ और जनकवि' पर श्री बिलारी दुबे ने एक मनोवैज्ञानिक और खोजपूर्ण लेख बाँचा। बहुत पसन्द किया गया। 'रामलीला बनाम रिपोर्ताज' पर श्री तकलीफदत्त चौधरी का 'पेपर' अत्यधिक पसन्द किया गया। इस निबन्ध मे व्यंग्य का पुट अच्छा था 'कजली और कविता' पर श्री मुक्तिमाधवजी का अर्थ-गर्भ निबन्ध कठिन होने पर भी पसन्द किया गया।

सभापति जी ने आशा प्रकट की कि 'जन-नौटंकी-मण्डली' शीघ्र ही तरक्की करेगी और आप इन निबन्धों को एक साथ पुस्तकाकार प्रकाशित करेंगे।

[प्रदर्शिनी]

सम्मेलन में प्रदर्शिनी का भी आयोजन था। इसकी वस्तुएँ एकत्र करने का सारा श्रेय जनकवि जोखू और कामरेड कानूनी

को मिलना चाहिये। प्रदर्शिनी मे स्वर्गीय क्षेमचन्दजी का हुक्का देखा गया था, क्षेमचन्दजी के पहले तो कोई सरपटवादी साहित्य-कार हुआ नहीं था, इसलिए उनके बाद के जीवित कवियो के स्मृति-चिह्न या पसन्द की चीजें रखी गयी थीं। जेसे बाबू पिकदानसिह चौहान का सिगरेट का डब्बा, डाक्टर लक्ष्मन विलास की चप्पल, मान्देयमाधव का चश्मा ल० ल० बडबडकर की गद्दी, कलमकृष्णचन्द चटपटकर का दातून करनेवाला ब्रश और कुछ तस्वीरें विशेष पसन्द की गयीं। तस्वीरो मे से कुछ 'धन-कटनी' की थीं। एक तस्वीर मे कुछ साहित्यिक, सगीतज्ञ और चित्रकार 'हिन्दू मुस्लिम एक हैं' के नारे लगाने के मूड मे दिखाये गये थे। कुछ चित्र पूर्णत: अश्लील थे, इसलिए उनका वर्णन उचित नहीं।

प्रहसन भी सुन्दर था। यदि उसके सम्वादों में से कांग्रेस को दी गयी गालियाँ निकाल दी जाती तो जन-नौटकी मण्डली का कार्य और भी पसन्द किया जाता। सवेरे चार बजे तक नौटंकी होती रही।

[कवि-सम्मेलन]

रात ६ बजे से सरपटवादी साहित्य के सुप्रसिद्ध कवि कविवर कनकात भगोत के सभापतित्व मे कवि सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। कई कवितायें इसलिए सुनायी गयीं कि वे साहित्य मे अद्भुत प्रयोग थीं। मैंने 'शार्टहैण्ड' मे दो एक कविताओं के लिखने का भी प्रयत्न किया। कवियों के नाम पहली वार सुने गये थे, अत लगभग सभी भूल गये हैं। एक कविजी जिनका चेहरा भी जनता नहीं देख पायी थी, क्योंकि उनका मुख बालों से पूरा का पूरा ढक गया था, लचकते हुए उठे। उन्होंने सुनाना प्रारम्भ किया—

शून्य वक्ष की उदास गंध-हीन,
काल-वायु शान्ति मे देवाल पर रेंग रही छिपकली
अमूर्त छन्द-सी फिरी अजान शब्द में भरी
अपार भाव स्वप्न से झुकी व' छिपकली चली गयी
व' छिपकली चली गयी...आदि, आदि।

सुननेवालों में से कुछ समालोचना कर रहे थे। मेरी बगल में बैठे एक कवि ने कहा—भाषा कुछ अधिक सामन्ती हो गयी है, अन्यथा कविता अच्छी है।

इसी तरह की बहुत-सी थोक और फुटकल कविताएँ पढ़ी गयीं। अगर कविता में भाव था तो भाषा लापता थी; भाषा थी तो भाव का अनुसन्धान करना पड़ता था। जब कवि-सम्मेलन समाप्त हुआ, तब भोर हो चला था।

रोमांस

इस दुनिया के परे भी एक दुनिया होती है। उसकी अपनी कहानी होती है। उसके अपने चाँद-सूरज होते हैं और होते हैं तारे। उस दुनिया मे ओसकणों को आँसू से कुछ कम नहीं समझा जाता। उस दुनिया की कहानी अलिफ लैला की कहानी से अधिक मिलती-जुलती है। 'चन्द्रकान्ता' से अधिक मेल खाती है। महाश्वेता और पुण्डरीक की कहानी से कम सच नहीं होती। कथा-सरित्सागर भी तो उसी दुनिया की देन है। यह दुनिया क्या है, जादू से भरा एक बाजार है, जिसमे ऐरी-गैरी वस्तुओं का मोल मात्र नहीं होता। तेल-साबुन नहीं बिकता। इसमें बिकती हैं फूल-सी जिन्दगानियाँ और फूल-सी जवानियाँ। दिल की यहाँ तो सर्वत्र खरीद-फरोख्त होती रहती है। ऐसी है यह दुनिया और आश्चर्य है कि ऐसी दुनिया मे फलता-फूलता है यह रोमास।

इस एक शब्द में जो जादू है उसे वे अच्छी तरह जानते हैं जो ए० बी० सी० डी० से अपना अध्ययन शुरू कर आज शेली और कीट्स तक पहुँचे हैं। फिर ऐसा कौन है जो यह न जानता हो कि इस एक लफ्ज 'रोमास' के उच्चारण के साथ इन सूने नयनों में एक नया ससार आ बसता है। हृदय में अद्भुत भावों की अनिर्वचनीय आँधी उठती है और तभी तो इन अंग्रेजी लेखकों को इस एक शब्द की याद आते ही जादू की खिडकियाँ, उनके

लहराता अथाह सागर, तूफान, बिजली और संकटों से वायुमंडल, इन सबके पार मधुरिम परियों का संसार ायी पड़ता है। यह सब किसका जादू है? केवल एक शब्द मास' का।

'रोमांस' मे जो शक्ति है वह न प्रेम में है, न प्रणय में और किसी अन्य शब्द में। वह अपने जैसा अकेला है। आप शब्दकोषों के पृष्ठ कितनी बार क्यों न उलट जायँ, जोड़ का दूसरा शब्द मिलना कठिन है, मुश्किल है, 'हार्ड' है। इसीसे तो किसी ने लिखा—'रोमास, तुम्हारी साधारण याद से मेरी आँखों के आगे जितने दृश्य घूम गये या तो मैं जानता हूँ या तू। इतने भयानक दृश्य, इतने सुन्दर दृश्य बिना तुम्हारी याद के अन्य शब्द की याद में कभी नहीं आ सकते और ··· इसीलिये तू धन्य है।

रोमांस की महिमा का गुणगान कर कितने लेखक हो गये, कितने कहानीकार हो गये, कितने कथाकार हो गये, किसी ने मोटे मोटे उपन्यास गढ़ डाले। किसी ने तिलस्मी जादुओं की पोथी की पोथी रँगकर लाखों कमाया। साहित्य में दूसरा है ही क्या? रोमांस ही तो भिन्न-भिन्न रूपों मे भरा पड़ा है। प्रेमलीला की विचित्र बातें और कारनामे ही तो रोमांस के अवतार हैं। आज के प्रेमी-प्रेमिकाओं के सम्मुख रोमांस की कितनी महत्ता है, भुक्तभोगी ही जानते हैं। प्रोफेसर जानते हैं, 'हास्टल' के अतिथि जानते हैं। आज के युवक-युवतियों के जीवन-रोगप संजीवनी का कार्य कौन करता है? रोमास। इसी से तो उसव महिमा गली-गली, कूचे कूचे और 'रोड'-'रोड' पर गायी रही है।

तो क्या इस रोमास के बिना जिन्दगी का सगगढ़ नहीं ; जा सकता? यह हमारे जीवन की 'विल' में, साहित्य के तवेरे

समाज के बारे में पूछा तो रहेगा ? रहने दीजिये। क्या बुरा है ? जीवन में रहेगा—चाँदी-सी रातें बसर होंगी। तूफान में आसमान उड़ेंगे। आगों के आगे-आगे अजीब गर्मी बना रहेगा। समाज में रहेगा, बड़े-बड़े मुकदमे उठ खड़े होंगे। संवाददाताओं की रोटी पानी का प्रबन्ध चलता रहेगा। अखबारों के 'एडीटर' मजेदार चीजों के लिए तरसते न रहेंगे। पाठकों को लजीज खबरों के लिए झींखना न पड़ेगा।

साहित्य में रोमास आ जायगा, तब क्या होगा ? अद्भुत-कथा, कल्पित-कथा, अमृत-कथा, असम्भव-कथा, जैसे आख्यानों और उपाख्यानों से साहित्य गद्गद् हो उठेगा, धन्य हो उठेगा, पूर्ण हो उठेगा। पढनेवालों को खाने-पीने की सुध-बुध न रहेगी। साहित्य के विद्यार्थी 'विहारी' की याद कर दूसरे कवियों का आवा हन करेंगे, और इस प्रकार 'रोमास' महाशय की बदौलत साहित्य में एक तूफान और आन्दोलन उठ खडा होगा। लोगों को कुछ दूसरा ही दिखायी पडेगा।

किन्तु क्या हिन्दी भाषा मे भी अंग्रेजो के घर से आये हुए इस 'रोमास' को स्थान दे दें ? मैं तो अच्छा नहीं समझता। कहीं 'हिन्दी' के सम्पादक महोदय जी न दे दें। ऐसा हो तो तलाशिये अपनी हिन्दी में। 'रोमास' का कोई सगा मिल जाय तो बहुत अच्छा। और यह लीजिये · · इसी डील डौल का 'रोमाञ्च' भी तो है। रोमास' के प्रवेश पर हमारी जो दशा होती है, रोमाञ्च के आने पर भी तो बहुत कुछ वही दशा हो जाती है। तो फिर इसके पहले कि 'रोमास' के लिए हम सिर पीटें, उछलें, कूदें, क्यों न एक बार 'रोमाञ्च' को ही याद कर लें। · यह देखिये 'रोमाञ्च' का उच्चारण करते ही 'रोमाच' हो आया।

निज कवित्त केहि लाग

जी हाँ, इसी से तो मैं कहता हूँ कि मुझे मेरी रचना अच्छी लगती है, बहुत अच्छी लगती है, अत्यन्त अच्छी लगती है और शायद इसीलिए कि अपनी चीज सबको अच्छी लगती है, अपनी दुनिया सबको पसन्द है, अपनी बातें सबको प्रिय हैं। मैं अपनी कविता से स्नेह नहीं रखता, श्रद्धा नहीं करता, पूजा नहीं करता, बल्कि उससे प्रेम करता हूँ, प्यार करता हूँ, इश्क करता था, मुहब्बत करता हूँ। ऐसा क्यों ? भला यह भी पूछने की बात है ? यह मेरा अपना जन्मसिद्ध अधिकार है, मेरी अपनी इच्छा है, मेरी अपनी मरजी है। मैं प्रिय वस्तु को प्यार करूँगा, किसी का इजारा ?

हाँ, हाँ मैं अपनी रचना को प्यार करता हूँ। उसके सुख-दुख की, सुन्दरता असुन्दरता की, उसकी मरजी को मैं अच्छी तरह खोज-खबर लेता हूँ। उसकी प्रत्येक बात पर ध्यान देता हूँ और यही सब बातें हैं जिनसे न वह मुझसे दूर है, न मैं उससे दूर, न वह मुझसे अलग है, न मैं उससे अलग। मैं उसे निहारता हूँ, वह मुझे निहारती है। मैं उसे पुकारता हूँ, वह मुझे पुकारती है, मैं उसे बनाता हूँ, वह मुझे बनाती है, मैं उसे लिखता हूँ, वह मुझे लिखती है, मैं उसे गाता हूँ, वह मुझे गाती है।

रचना और रचयिता का ऐसा सम्बन्ध होना भी चाहिये। स्वाभाविक आत्मीयता भी तो इसी को कहते हैं। मैं और मेरी रचना बिल्कुल दो भिन्न वस्तुएँ, एक हाड़-मास का पुतला, दूसरी

समाज के बारे में चुप ही रहेगा ? रहने दीजिये। क्या बुरा है ? जीवन में रहेगा—चाँदी-सी रातें सरस होंगी। तूफान में अरमान उठेंगे। आर्यों के आगे-आगे अजीब समाँ बँधा रहेगा। समाज में रहेगा, बड़े बड़े मुकदमे उठ खड़े होंगे। गनान्दाताओं की रोटी पानी का प्रबन्ध चलता रहेगा। अखबारों के 'एडीटर' मजेदार चीजों के लिए तरसते न रहेंगे। पाठकों को लजीज खबरों के लिए झींखना न पड़ेगा।

साहित्य मे रोमान्स आ जायगा, तब क्या होगा ? अद्भुत-कथा, कल्पित-कथा, अमृत-कथा, असम्भव-कथा, जैसे आख्यानों और उपाख्यानों से साहित्य गद्गद् हो उठेगा, धन्य हो उठेगा, पूर्ण हो उठेगा। पढनेवालो को खाने-पीने की सुध-बुध न रहेगी। साहित्य के विद्यार्थी 'बिहारी' की याद कर दूसरे कवियों का आवाहन करेंगे, और इस प्रकार 'रोमांस' महाशय की बदौलत साहित्य मे एक तूफान और आन्दोलन उठ खडा होगा। लोगो को कुछ दूसरा ही दिखायी पडेगा।

किन्तु क्या हिन्दी भाषा मे भी अंग्रेजो के घर से आये हुए इस 'रोमांस' को स्थान दे दें ? मैं तो अच्छा नहीं समझता। कहीं 'हिन्दी' के सम्पादक महोदय जी न दे दें। ऐसा हो तो तलाशिये अपनी हिन्दी में। 'रोमांस' का कोई सगा मिल जाय तो बहुत अच्छा। और यह लीजिये · · इसी डील डौल का 'रोमाञ्च' भी तो है। रोमांस' के प्रवेश पर हमारी जो दशा होती है, रोमाञ्च के आने पर भी तो बहुत कुछ वही दशा हो जाती है। तो फिर इसके पहले कि 'रोमांस' के लिए हम सिर पीटें, उछलें, कूदें, क्यों न एक बार 'रोमाञ्च' को ही याद कर लें। यह देखिये 'रोमाञ्च' का उच्चारण करते ही 'रोमांच' हो आया।

निज कवित्त केहि लाग

जी हाँ, इसी से तो मैं कहता हूँ कि मुझे मेरी रचना अच्छी लगती है, बहुत अच्छी लगती है, अत्यन्त अच्छी लगती है और शायद इसीलिए कि अपनी चीज सबको अच्छी लगती है, अपनी दुनिया सबको पसन्द है, अपनी बातें सबको प्रिय हैं। मैं अपनी कविता से स्नेह नहीं रखता, श्रद्धा नहीं करता, पूजा नहीं करता, बल्कि उससे प्रेम करता हूँ, प्यार करता हूँ, इश्क करता था, मुहब्बत करता हूँ। ऐसा क्यों ? भला यह भी पूछने की बात है ? यह मेरा अपना जन्मसिद्ध अधिकार है, मेरी अपनी इच्छा है, मेरी अपनी मरजी है। मैं प्रिय वस्तु को प्यार करूँगा, किसी का इजारा ?

हाँ, हाँ मैं अपनी रचना को प्यार करता हूँ। उसके सुख-दुख की, सुन्दरता असुन्दरता की, उसकी मरजी को मैं अच्छी तरह खोज-खबर लेता हूँ। उसकी प्रत्येक बात पर ध्यान देता हूँ और यही सब बातें हैं जिनसे न वह मुझसे दूर है, न मैं उससे दूर, न वह मुझसे अलग है, न मैं उससे अलग। मैं उसे निहारता हूँ, वह मुझे निहारती है। मैं उसे पुकारता हूँ, वह मुझे पुकारती है, मैं उसे बनाता हूँ, वह मुझे बनाती है, मैं उसे लिखता हूँ, वह मुझे लिखती है, मैं उसे गाता हूँ, वह मुझे गाती है।

रचना और रचयिता का ऐसा सम्बन्ध होना भी चाहिये। स्वाभाविक आत्मीयता भी तो इसी को कहते हैं। मैं और मेरी रचना बिल्कुल दो भिन्न वस्तुएँ, एक हाड़-मास का पुतला, दूसरी

चुनाव

जीवन मे चुनाव का चौगुना स्थान है। इसे हम आप और हमारे आपके बाप से लेकर मनुष्यता के विधाता महात्मा गान्धी और दुनिया के विधाता ब्रह्मा तक सभी मानते हैं। टोपी से लेकर जूते तक, मर्द से लेकर औरत तक, देवी से लेकर देवता तक, हाकिम से लेकर नेता तक सबका चुनाव आवश्यक है, महत्त्वपूर्ण है। ऐसी कोई वस्तु नहीं जिससे आपके जीवन का सम्बन्ध होने जा रहा हो और आप अपने मन की चुनने की इच्छा न करें। इसी व्यवस्था का अभाव है जो आज तलाकों की संख्या बढ़ गयी है, इसी व्यवस्था के सम्पन्न न होने से सुन्दर भी असुन्दर लगता है। हाकिम आपने ठीक चुना नहीं, हुकूमत बिगड़ गयी; देवी-देवता का चुनाव ठीक हुआ नहीं, पूजा व्यर्थ गयी। इतने से ही आप समझ सकते हैं कि चुनाव जीवन के लिए उतना ही आवश्यक है, जितना किसी कमजोर लीडर के लिए उसका हठ। साम्राज्यवाद के लिए फासिज्म, कम्युनिज्म के लिए श्रम और किसी महासभा के लिए प्रस्ताव।

शासक का ही चुनाव देख लीजिये। जनता के प्रतिनिधि का ही चुनाव देख लीजिये, मेम्बरों का ही चुनाव देख लीजिये, इस चुनाव की प्रतीक्षा मे कितनों की आँखें खराब हो जाती हैं, कितनों का धीरज टूटते-टूटते बचता है, कितनों के पेट का पानी पच जाता है, तब कहीं एक युग के बाद यह चुनाव का

पर्व आता है।...और तमाम म्युनिस्पैलिटियों की चण्डाल-चौकड़ी इस पर्व से अपने को धन्य कर लेना चाहती है। ढोल-मजीरे बजा-बजाकर जनता का गुण गाया जाता है। कोई कहता है: हम पृथ्वी पर स्वर्ग बनाने की योजना बना चुके हैं, चुनाव में हम सफल होंगे। कोई कहता है—हमने जनता के लिये क्या नहीं किया। चाहते तो चोर-बाजार मे लाखों कमाकर रख देते। लेकिन 'कुछ' न किया। किसलिए? केवल जनता के लिए। कोई कहता अगर अमुक सेठ चुनाव में लिये गये तो बाजारू चावल कङ्कड़ों से पट जायगा। कहने का साफ-साफ मतलब यह कि कोई कुछ कहता, कोई कुछ। यह जनता के भाग्य विधाताओं का चुनाव कहलाता है। जनता के लिए इसका क्या महत्त्व है—कुछ मत पूछिये। बस जान लीजिये कि पूजा होने लगती है पूजा। कोई भावी मेम्बरी का इच्छुक बोलता है—बस, अब क्या? मैं निस्सन्देह मेम्बर होऊँगा। क्यों न—कितने हजार लुटा दिये। फिर भी निराशा ही मिले, कदापि नहीं।

एक मेम्बरी के इच्छुक को देखा, उस दिन मुन्शी जी से बात-चीत करते-करते उन्होंने नीचे-से पाँच का नोट हाथों में थमा ही तो दिया। मुन्शी जी ताकते रह गये—तब तक आवाज आयी—'ले लीजिये न, आपके पास कुल चार वोट होंगे। बस, कृपा बनी रहे तो काम बनने में क्या देर है।' चुनाव के पवित्र पर्व पर यह सब तो साधारण कृत्य है।

एक दिन की बात, देखा—जौहरी जी बसन्तू साह से कह रहे हैं—'आप लोग चाहे तो मुझे आप लोगों की सेवा करने का अवसर मिल सकता है। जानते ही हैं, मैं आपका पुराना मेम्बर हूँ। कम से कम अब तो सेवा का अवसर दीजिये ही। बहुत दिनों बाद यह चुनाव का अवसर आया है।' जौहरी जी की

एक दूसरे कवि जी कविता के लिए प्रार्थना कर चुकने के पश्चात् लिखते हैं—

'कवियों के हस्ताक्षर देने की स्कीम वास्तव मे प्रशंसनीय है। तदर्थ बधाई। क्या हस्ताक्षर आप कवियो से अलग से मँगवाते हैं या उनके आये हुए पत्रों से काट लेते हैं ? सूचित करें।'

पत्र से साफ प्रकट हो रहा है कि यदि हस्ताक्षर अलग से मँगवाया जाता हो तो मैं इसके लिए भी तैयार हूँ। एक दूसरे महोदय ने तो अपना हृदय साफ-साफ निकाल कर यों रख दिया है—

'मैं मुद्दत से आपकी सेवा के निमित्त समय एवं अवसर की चिन्ता मे हूँ। आपके साप्ताहिक...को कुछ विशेप साहित्योपहार देते रहने की अभिलापा जगी है।'

कविता छापने के लिए प्रार्थना करते हुए एक महाशय अपना उदार आशय इस प्रकार प्रकट करते हैं—

'आशा ही नहीं कि यह इस योग्य है कि आपकी साप्ताहिक पत्रिका में स्थान पा सके। कारण मुझे मालूम नहीं कि यह आपकी पत्रिका के ध्येय के अनुकूल है या प्रतिकूल। फिर भी आप जैसे विद्वान के पास साहित्य-पुष्प की एक पंखुडी ही भेजकर मुझे सन्तोप है। इसे स्वीकार करना आपकी इच्छा पर निर्भर है अन्यथा स्टाम्प साथ है।'

एक दूसरे कवि जी की हिदायत है—' . अगर इसमे कहीं संशोधन की आवश्यकता हो और वह थोड़ी तो यथासाध्य चेष्टा करेंगे और अगर ज्यादा हो तो संकेत करते हुए मेरे पते से लौटाने की कृपा करेंगे। फिर मैं दुरुस्त करके .।'

एक 'लेखक' महोदय कवि बनना चाहते हैं। लेखक बनने की

आपने चेष्टा की ; किन्तु असफल रहे। अतः कवि बनने के प्रयत्न में ही जुट पड़े। पत्र यों है—

'अपने दो लेखों को आपके द्वारा अस्वीकृत किये जाने पर भी यह एक छोटी-सी कविता भेज रहा हूँ। साहस धृष्ट है।'

आगे एक दूसरा पत्र पढ़ने को मिला—

"मैंने एक तुकबन्दी की है। मैं उसे आपके यहाँ से निकलने वाली पत्रिका.. . में छपवाना चाहता हूँ। मैं समझता हूँ मुख-पृष्ठ की शोभा बढ़ अवश्य जायगी। यों आप जैसा उचित समझें करें।'

कुछ दिन पश्चात् एक दूसरे कवि जी का पत्र पढ़ने को मिल गया। इस पत्र के लेखक 'कवि जी' 'सेकण्ड-ईयर' में पढ़ते हैं और हिन्दी में (ईनाम नहीं 'इनाम' पाते हैं—

'आज मैं अपने भाग्य का लेखा आपके सम्मुख अपनी लेखनी रूपी तूलिका द्वारा चित्रित कर रहा हूँ। 'अञ्जन वदना सकल दिशाओं ने कितने अवगुण्ठन डाले।' यह मेरे हृदय का एक स्वच्छ दर्पण है। इसी में आप मेरे हृदय का प्रतिबिम्ब देखेंगे। मेरे भाग्य में क्या लिखा है यह कौन जानता है...पर आप मेरे लेख में हृदय के भाव अवश्य ही चित्रित पाइयेगा। ईश्वर की लीला मैं आपके सम्मुख यह एक काव्य-लेखा भेजा रहा हूँ।'

अब एक कवियित्री जी का पत्र भी आप पढ़ लीजिये। आपकी एक रचना क्या छप गयी, धड़ाम से तीन अन्य रचनाएँ आ गिरीं। आपने लिखा—

'बहुत दिन बाद आपके पत्र में अपना एक गीत छपा देखा। कोटि धन्यवाद। कुछ गीत और।'

एक दूसरा पत्र बड़ी कड़ाई से लिखा गया है। शायद कवि जी को 'परिणाम' ज्ञात हो गया है—

'कविता के साथ चुटकुले भेज रहा हूँ। अगर प्रकाशित करना हो कर दीजियेगा। नहीं तो वहीं सब फाड़कर फेंक देना। क्योंकि वापस मँगाने को छः पैसे का टिकट नहीं।'

लगे हाथ कुछ बाल कवियो के भी पत्र पढ़ें। कितनी सरलता और भावुकता होती है उनके पत्र मे? बस, दिल मे जो आया लिख बैठे। एक पत्र यो है—

'सम्पादक जी की कृपा बनी रहे। बाबू जी के कहने से कविता भेजा है। छाप देंगे।'

एक दूसरे बच्चे का पत्र है—'. मैंने अपना नाम देखा छपा था। दूसरे का भी उत्तर लिखूँगा। जरूर छापना। भाई साहब का कहना है कि मेरा उत्तर सही है। एक कवित्त भी छाप दीजिये, बडी मेहनत से बनाया है।'

एक बालक ने छः पैसे का टिकट भेजते हुए अपने रिजर्व 'कालम' में अपनी कविता छापने के लिए प्रार्थना की और बडी सख्ती से कहा कि उत्तर के साथ पद्य नहीं छपेगा तो वह उत्तर न लिखा करेगा। पत्र इस प्रकार है—

'मान्यवर महोदय सम्पादक जी महाशय जी,

प्रणाम मैंने उत्तर लिख लिया। पहले तो बड़ा कठिन लगा फिर बडी जल्दी आ गया। हमारी कविता लौटाएँ नहीं, अगर इसे न छापोगे तो सच कहता हूँ मैं उत्तर नहीं लिखूँगा।'

एक अन्य बालक ने बड़ी खुशी से लिखा है—'. . भैया के नाम के साथ-साथ मेरा भी छाप दें। इसे ठीक करने मे मैंने भी मेहनत किया है। बडी खुशी होगी कि .। मैं कविता भी लिखता हूँ। फिर भेज दूँगा।'

इन भावी कवियों मे कितने राष्ट्र के रत्न छिपे हैं, कहा नहीं जा सकता।

गिरहकट साहित्यिक

जानते हैं आदमी की पहचान कैसे की जाती है ? नहीं तो सुनिये, उसकी वेशभूषा, आकृति और शराफत से। वेशभूषा से उसका रहन-सहन, आकृति से वंशावली, बातचीत से उसका हृदय परखा जाता है। किन्तु क्या यह भी जानते हैं कि साहित्यिक की पहचान कैसे की जाती है ? यदि नहीं तो वह भी सुन लीजिये; जिस मनुष्य में जितना ही अपना प्रदर्शन करने की शक्ति हो, जिस इन्सान में जितनी ही गिरहकटी की शक्ति हो, जिस व्यक्ति में जितना ही अधिक चुम्बक हो—बस समझ लीजिये वह उतना पहुँचा हुआ साहित्यिक है। किसी भी साहित्यिक माई के लाल का इन गुणों मे छिपना ठीक नहीं, बशर्ते कि वह साहित्यिक हो और पहले से सरस्वती के पीछे पड़ गया हो।

यहाँ हम गिरहकट साहित्यिकों के सम्बन्ध में कुछ चर्चा कर साहित्यिकता का प्रायश्चित करेंगे। जाड़े के दिन थे, वैसे कितने दिलों में गर्मी भी कम नहीं थी। पक्की सड़को पर चल सकना कठिन था, पैर जमीन पर पड़ने के बजाय ऊपर उठ जाते थे। एक प्रसिद्ध होनेवाली संस्था का अधिवेशन था। दूर-दूर के बेकार साहित्यिकों को बुलाया गया था। कुछ लोग आ भी गये थे। संस्था के उत्सव में पहुँचने भर की देर थी कि उनकी अगल-बगल साहित्यिक गिरहकट लग गये। सीधे आदमी क्या ताड़ें ? सबको पान खिलाते, खुद खाते। साहित्यिक बातचीत का सिलसिला

भी चलता रहता। बात की बतंगड भी हो जाती। कोई चिढ उठता, कोई हँस पडता। लेकिन इतने लोगों के बीच भी गिरह-कटों का काम जारी था। वे हाथ धोकर निराला जी के पीछे पड गये। हाँ, यदि इन गिरहकट साहित्यिकों की सारी चालाकी समझनेवाला कोई था तो मैं। समझ सकने की शक्ति हो तो समझ लीजिये कि मैं भी उन्हीं मे से एक था। यानी एक ही जाति-बिरादरी थी। फिर इन लोगों ने किया क्या? किसी ने निराला जी के संस्मरण कैंची से कतर लिये, किसी ने उनके दो-चार ऊल-जलूल वाक्य ही 'काट' लिये, किसी ने रहन सहन की तस्वीर उडा ली, किसी ने उनके साहित्यिक उपदेश ही कतर-ब्योत कर रख लिये। हुज्म आया और चला गया। गिरहकटों की दुनिया आबाद हो गयी। पत्र-पत्रिकाओं मे मैटर धडाधड पहुँच गये। कुछ छपे और कुछ वास्केट में छिपे।

एक दूसरा अधिवेशन था। सुश्री महादेवी वर्मा आनेवाली थीं। गिरहकटों का दल इन्तजार मे था। बहुत धनी महिला से भेंट होगी। एक 'अटैची' भी मार लें तो साहित्यिकता की मुहर लगे बिना न रहे। कोई सोचता—पहले परिचय का खजाना मैं लूटूँगा। कोई विचारता—जो कुछ मजेदार 'चीज' रहे मैं ले लूँ। बादवाले कोरा-कोरा उपदेश ही लेकर रह जायँगे। महा-देवी जी आयीं। गिरहकट साहित्यिकों में गरमाहट आ गयी। वे जहाँ ठहरीं, कोई पत्रकार बनकर पहुँचा, कोई प्योर साहित्यिक, कोई सच्चा गिरहकट बनकर। हाँ, मेरे जैसे गिरहकट ने यदि बड़ी सफाई से सबके दिल की कोई बात काट कर रख ली तो यह कि 'नागरी-प्रचारिणी सभा' उन्हें बुलाकर भी अपना सम्मान न बढा सकी। मेरे जैसे गिरहकट के लिए अच्छा ससमरण तैयार हो गया। बङ्गाल-पीड़ितों के लिए कुछ स्कीमे तो मैंने इस तरह

'काट' कर निकाल लीं कि देवी जी को इस बात का कुछ पता ही न चला।

कविवर गोपाल सिंह नेपाली आये थे। कविता की मस्ती में झूमनेवाला दल-बादल हरेक जगह था। कवि बैठ गया है, मण्डली झूम रही है। गिरहकट भी कतर-ब्योंत में लगे हैं। समझ रहे हैं, वहाँ से मैंने क्या जेबकटी की होगी? स्वर, वह स्वर जिसकी बदौलत नेपाली जी आनन्द का स्रोत बहा देते हैं। ठीक वही स्वर मैंने नेपाली जी के गले से इस प्रकार निकाल लिया कि उनको रञ्चमात्र पता न चला। कितने गिरहकट साहित्यिकों ने तो उनकी कविता की कई पंक्तियाँ ज्यों की त्यों काटकर रख लीं। और आज उनकी 'ट्यूनिंग' व 'शैली' तो कई ऐसे गिरहकटों की अपनी वस्तु हो गयी है। गिरहकट साहित्यिक ऐसी चीजों पर बिना कब्जा किये मानते ही नहीं।

एक बार पन्तजी और भट्ट जी तथा कई अन्य कलाकार अस्वस्थ हो गये थे। समाचार जानने की देर थी। कितने गिरहकट साहित्यिकों को अच्छा मौका मिला। झट अपनी-अपनी कला के सहारे लगे हाथ साफ करने। पत्रकार बननेवालों की खूब बन आयी। उन्होंने पन्तजी के लिए कुछ कागज काला कर दिया और हाथ लग गयी 'प्रतिष्ठा'। यह सबसे सरल गिरहकटी है। कितनों ने तो उनकी मृत्यु का समाचार तक उड़ा दिया। लेकिन ऐसे गिरहकटों की प्रतिष्ठा हाथ न लगी, बल्कि मुँह छिपाना कठिन हो गया। यह रहे थोड़े से दृश्य, जिनकी याद कर मेरे जैसे कठिन गिरहकट साहित्यिक अब भी फूल उठते हैं।

मान लीजिये मैं अखबार-नवीस हूँ। किसी की जेब ही तो काटता हूँ। आफिस में अपनी कला का प्रदर्शन करता हूँ

और अन्त मे गिरहकटी का पुरस्कार प्राप्त हो जाता ह। लेकिन यह गिरहकटी कुछ विशेप छिपी नहीं, खुली ह।

मान लीजिये मैं गिरहकट साहित्यिक हूँ, लेकिन सच मे हूँ एक कवि। फिर क्या, तुलसी से लेकर महाकवि चच्चा तक सबकी 'जेब' काटता हूँ। जहाँ कहीं, कागज-पत्र या पुस्तक मे वे मिल जायँ, झट ऐसी सफाई से उनकी निधि काट लेता हूँ कि ईश्वर भी नहीं जान पाता।

मैं किसी साहित्यिक संस्था का मंत्री हूँ। बस, पहले नम्बर का गिरहकट साहित्यिक मुझे समझिये। मैं चन्दा और पुस्तक ही किसी की जेब से नहीं निकालता, बल्कि निकालता हूँ बडे-बडे साहित्यिकों के मस्तिष्क की बदौलत 'यश'–'प्रतिष्ठा'। फिर क्या पूछना है, थोडे ही दिनों में मेरी गिरहकटी 'धन्य' हो जाती है और मैं एक गिरहकट साहित्यिक बन जाता हूँ। यदि सचमुच किसी को साहित्यिक बनना है तो उसे हर प्रकार की गिरहकटी करनी होगी। बडे-बडे साहित्यिकों की जेबें काटनी होंगी। बडे-बडे स्वर्गीय गिरहकट साहित्यिकों की अमूल्य निधि मे से सफाई के साथ कतर-ब्योंत करनी होगी। फिर वह तो एक कला है। उसके बिना साहित्यिक का जीवन नहीं। गिरहकटी एक निर्दोप, पवित्र पेशा है और गिरहकट साहित्यिक तो और भी निर्दोप है।

हमारा सभी सम्पादकों से निवेदन है कि वे गिरहकट साहित्यिकों को अवश्य प्रोत्साहन दें, क्योंकि उनके पत्र मे भी तो गिरहकटों का ही सहयोग है।

इन्तजार का मजा

मजे भी कई तरह के होते हैं। जिन्दगी के मजे से तो सभी परिचित हैं। यह ऐसा मजा है जिसमें दुनिया का प्रत्येक मजा निहित है, समाया-सा है। इन मजों में से इन्तजार का मजा भी एक है।

इन्सान को कदम-कदम पर इन्तजार का मजा लेना पड़ता है। चाहे वह मोल लेना पड़े या मुफ्त में मिले। जब वह धरती पर आया तब उसे माँ के प्यार के लिए इन्तजार का मजा लेना पड़ा। लेकिन मोल नहीं, वह तो उसे मुफ्त मिल गया। फिर माँ इन्तजार का मजा लेने लगी और उस दिन की याद करने लगी जब उसका बच्चा बड़ा होगा और उसे तपस्या न करनी पड़ेगी।

जब बालक जवान हुआ तो उसे फिर इन्तजार का मजा लेना पड़ा और अब वह मौत का इन्तजार करने लगा। इस बीच उसे कभी डर लगा, कभी आनन्द आया, लेकिन अन्त तक उसे मालूम न हो सका कि मौत के इन्तजार का मजा कैसा है। वह क्या जाने? इस मजे को तो दुनिया से परे पहुँच जाने वाले महापुरुष ही जानते होंगे। या वे जानते होंगे जो आज शांति के लिए बहुत बेचैन हैं। मगर युद्ध का इन्तजार कर रहे हैं।

यह तो रही दूर की—ऊँची उडान। अपने पैरों के नीचे ही देखिये—धरती पर। आप इस मजे को पाने या लेनेवालों की एक जमात ही पायेंगे। महात्मा गान्धी से लेकर हिटलर तक,

गाँगू तेली से लेकर महाराज इन्द्र तक, सभी तो इन्तजार कर रहे थे—कोई किसी का, कोई किसी का। महात्मा गान्धी उस घड़ी का इन्तजार करते थे जब सारा विश्व प्रेम के सूत्र मे बँधकर अहिंसा का धर्म देवताओं को भी समझाने लगेगा, हिटलर के जीवित साथी इस बात का इन्तजार कर रहे हैं कि कब सारे विश्व मे फासिज्म का, 'हिटलररिज्म' का नगाड़ा बजने लगेगा। गाँगू तेली भी चाहता है कि उसका कोल्हू का बैल आँखों पर पट्टी बाँधकर चक्कर न लगाया करे और न वह उनके पीछे अपना जीवन बर्बाद करे। वह आज समझने लगा है कि जमाना प्रगतिशील हो गया है। इसलिए उसके आँगन मे भी साम्यवाद के बादल को छाना चाहिये। वह कामरेड हो गया है। सचमुच, इन्तजार के मजे को सिर्फ वही जान भी सकता है। दुनिया क्या जाने ?

राजनितिज्ञों की बात लीजिये। तीसरा महायुद्ध हो या न हो, अव्वल शान्ति बनी रहे। शान्ति न रहेगी तो 'स्वार्थों' का इन्तजार कैसे होगा ? शान्ति छाये, इसका इन्तजार है। शान्ति के घोर अँधेरे में अगर सुख मिले, स्वार्थ सिद्ध हो जायँ, यश मिलते-मिलते रह जाय, धाक जम जाय, दुश्मन की, दुष्टों की पूँछ उखड़ जाय तो इन्तजार है। बार-बार इन्तजार है। राजनीतिज्ञ इन्तजार का यह मजा युगों तक ले सकते हैं। कौन समझदार इस बात का इन्तजार नहीं कर रहा है कि लोकतन्त्र फासिज्म के मुँह से निकल कर सर्वदा के लिए शान्ति का इन्तजार करे, सच पूछिये तो इस इन्तजार के मजे मे स्वार्थ तो है ही नहीं, कोरी सेवा भावना है। ईश्वर करे, राजनीतिज्ञ अधिक दिन तक इन्तजार का मजा न लें और उन्हें मनचाहा दिन देखना नसीब हो।

अब कुछ निज की सोचिये। 'स्वराज्य' जैसी नाचीज के लिए आप काफी दिनों से इन्तजार कर रहे थे, जो मिलकर भी न मिलने के बराबर होता रहा है। इस लम्बे इन्तजार को कहने-सुनने में एक इतिहास का खासा मसाला प्रस्तुत हो जाय। लेकिन हाँ, ऐसे इन्तजार के लिए आपने बड़े-बड़े अनर्थ किये—महात्मा गान्धी जैसे वाइसरायों के मित्र को आपने जेल की कोठरी में रहने के लिए बाध्य किया। इतनी सुन्दर स्वदेशी सरकार को '४२ के आन्दोलन की चक्की मे पीसने का प्रयत्न किया।

जाने दीजिये, ये खतरनाक बातें हैं। समझा तो रहे हैं हम आपको, सरकार हमें समझाने के लिए कमर कस लेगी। अब कुछ छोटे-मोटे नमूने लीजिये, मसलन पाकिस्तान। इसके लिए मिस्टर जिना को न जाने कितनी बार नाक-भौं सिकोड़ना पड़ा, तब कहीं जाकर इन्तजार खतम हुआ और मजा बिखरा। लेकिन यह मजा तो ऐसा शाश्वत है कि लीग या उसके गण दो चार शताब्दियों क्या, कल्पों तक ले सकते थे। घटने का तो यह नाम न ले।

प्रेमी जिस इन्तजार का मजा लेता है वह सपने में भी दूसरों को मयस्सर नहीं हो सकता। इसी से तो वह अक्सर कहा करता है कि—'है वस्ल से भी जियादा मजा इन्तजार का।' यही बात सबके लिए समझिये। यदि सचमुच ब्रिटेन से लौ लगा ली तो फिर रोना-गाना कैसा? पड़े हैं, कभी न कभी तो छाती ठण्डी होगी ही।

अब आ जाइये पत्रकारों की दुनिया मे। अखबार-नवीसों की अजीबो-गरीब गलियों में। एक से लेकर एक सौ तक, चाहे जिसे देखिये इन्तजार का मजा ले रहा है। क्या लेखक, क्या

ऐसे साहित्यकारों की औंधी खोपड़ियाँ यदि कम्युनिष्ट पार्टी के सदर दफ्तर में सजाकर सुरक्षित रखी जायँ तो भविष्य में प्रगतिशीलों का मार्ग-प्रदर्शन भली-भाँति हो सके।

रहस्यवादी साहित्यकारों की आँखें हमेशा आकाश में कुछ ढूँढ़ा करती हैं जिसका उनपर यह प्रभाव होता है कि वे कुछ बड़ी बड़ी, दिव्य और दूरदर्शी हो जाती हैं। नाक में चाँद सितारों की गन्ध पकड़ लेने की अद्भुत शक्ति आ जाती है। रहस्यवादी साहित्यकार धरती की ओर नहीं देखता। परिणाम यह होता है कि उसकी खोपड़ी सांसारिकों से नहीं मिलती। मस्तिष्क की शिराएँ सदा ऐसी ही बातों की रचना करती हैं, जिनका समझना साधारण मनुष्यों की शक्ति के परे है। ऐसे साहित्यकारों की बहुमूल्य खोपड़ियाँ कुतुबमीनार से लटका दी जाया करें तो उनकी आत्मा को शान्ति तो मिले ही, साथ-साथ रहस्यवादियों के लिए सहज में एक तीर्थ भी बन जाय। कुतुब की लाट स्वदेशी सरकार से अवश्य प्राप्त की जा सकती है।

ब्रजभाषा के साहित्यकारों की खोपड़ी तुंदैल शरीर पर अवस्थित रहती है, अतः छोटी होती है। किसी-किसी पर बाल नहीं होता। देखने में गम्भीर, समझने में वियोगिनी और छूने में ब्रजभाषा की तरह सरकने वाली होती है। ब्रजभाषा के साहित्यकार नयी दुनिया को देखना नहीं चाहते। इसलिए उनकी आँखें अधिक समय तक बन्द रहती हैं। जिसका कोई विशेष असर खोपड़ी पर नहीं पड़ता। नाक उठी हुई होती है जिसके ठीक ऊपर ललाट पर कृष्णचन्द्र का चरण-चिह्न विराजता रहता है। यह चरण-चिह्न इस बात का द्योतक है कि साहित्यकार सिवा गोपियों के विरह के कुछ नहीं लिख सकता। ब्रजभाषा के साहि-

त्यिक गोपियों का विरह-रुदन अभी तक नहीं भूले हैं, इसलिये उनके कानों में प्रगतिशील कविता घुसती ही नहीं। ऐसे साहित्य-कारों की खोपड़ियाँ; वृन्दावन के कुञ्जों में चबूतरे बनवाकर रख दी जायँ। यह कार्य ब्रजभाषा-साहित्य-मण्डल का होना चाहिये।

ग्राम-साहित्य का संग्रह करनेवालों की खोपड़ी प्रातःकाल देहातों में दीवार से लगकर जातों का गीत सुनते-सुनते घिस गयी होती है। सिर पर गेसू न रखने के कारण खोपड़ी में कोई सुन्दरता नहीं होती। कानों को बिरहा सुनते-सुनते पक जाना पड़ता है, जिसका असर यह होता है कि खोपड़ी ऊबड़-खाबड़ भी हो जाती है। गांधी टोपी से सुरक्षित रहने के कारण उसमें और किसी प्रकार की कृत्रिमता यद्यपि नहीं आने पाती, फिर भी छायावादी या रहस्यवादी साहित्यकारों की खोपड़ी जैसी सुन्दर नहीं होती। ऐसे साहित्यकारों की खोपड़ियाँ यदि किसी जगह सुरक्षित रखी जाया करें तो यह सिद्ध बात है कि भविष्य के ग्राम साहित्य-संग्रह करने वालों को उनसे बड़ी स्फूर्ति मिले।

हास्य के साहित्यकारों की खोपड़ी बड़ी विचित्र होती है। अतः इस सम्बन्ध में विशेष सोचने की आवश्यकता होगी। ऐसे साहित्यकार बड़ी दूर की कौड़ी मार लाते हैं। इनकी खोपड़ी में ऐसी शिराएँ गुथी हुई होती हैं जो पराधीन वातावरण में भी हँसने हँसाने की ताकत रखती हैं। अतः खोपड़ी कुछ बोझिल होती है और बहुमूल्य होती है। चेहरा सर्वदा हँसने-हँसाने से आवश्यकता से भी अधिक बढ़ जाया करता है। हास्य के साहित्यिकों का दिमाग भी चेहरे के साथ साथ बढ़ा हुआ होता है। मिस्टर जानबुल से लेकर एक कम्युनिस्ट तक को बनाने का

कार्य उन्हीं की खोपडी सम्पन्न करती है। अतः ऐसे साहित्यकारों की खोपड़ियाँ काशी नागरी-प्रचारिणी से सटे रहनेवाले कला-भवन मे रखी जाया करें तो साहित्य की रेडियम सरीखी वस्तु की रक्षा हो जाय।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन और काशी-नागरी प्रचारिणी सभा के उच्च अधिकारियो की खोपड़ियाँ, चाहे वे पहले कैसी भी क्यों न रही हों, प्रयाग के हिन्दी-अजायब घर मे सजाकर रखी जाया करें तो सम्मेलन परीक्षार्थियो के अध्ययन करने में विशेष सुविधा हो। यदि कोई विद्यार्थी किसी पूर्व साहित्यिक की खोपडी पर थीसिस भी लिखना चाहे तो निश्चिन्त होकर लिख सके।

मेरे सुझावों पर किस प्रकार विचार विनिमय होता है—मुझे यह देखना है। प्रतीक्षा मे हूँ।

छपास और डकैती

प्रत्येक खोपड़ी रखने वाले मनुष्य को अपनी बेतरतीब और बेहिसाब जिन्दगी में ऐसे लोग अवश्य मिलते हैं जो आँख में धूल झोंकने की कला की अच्छी जानकारी रखते हैं। आँख में धूल झोंककर तो नहीं, पर चश्मा देकर यदि बनारस की किसी गली में कोई दस बरस का बालक, जब कि आप दूकान पर खड़े होकर पान की गिलौरियाँ मुँह उठाकर गले के पास रखने जा रहे हों, आपके पाकिट से मनीबेग लेकर चम्पत हो जाय तो आप आश्चर्य करेंगे और कदाचित वह मिल जाय तो उसकी इस सफाई से भरी कला पर कुछ पुरस्कार भी देना चाहेंगे, किन्तु इसी दुनिया मे कुछ ऐसे जन भी विराज रहे हैं जो न किसी की आँख मे धूल झोंकने की चेष्टा करते हैं और न चकमा देने की आवश्यकता समझते हैं, फिर भी ऐसा हाथ साफ करते हैं कि आप दिल मसोस कर रह जाइये। ऐसे ही 'महाजनों' को हम 'साहित्यिक डाकू' के नाम से स्मरण करेंगे। अपनी इस डकैती के बल पर ही साहित्यिक समादरों में ऐसे जन मूँछ पर ताव देते हुए 'साहित्यिकता' का बिल्ला लगाये घूमा करते हैं; और किसी भी माई के लाल की हिम्मत नहीं, जो ऐसे लोगों की पोल खोलने के लिए उतारू हो।

यह मैं भी मानता हूँ कि सभ्यता का ताला किसी कानूनी ताले से कम नहीं और इसी ताले के फेर मे पड़कर एक बार एक

मेरे मित्र एक बारात मे एक सज्जन को गाली न दे सके। बात यह थी कि मेरे मित्र की बिलकुल नयी चप्पल उक्त सज्जन ने दिन दहाडे आँखों के सामने ही पहन ली और इधर-उधर घूमने लगे। मेरे मित्र ने पूछा कि मेरी चप्पल क्या हो गई, नहीं मिल रही है; बिलकुल आप जैसी ही थी, तो चप्पल पहन कर दृढता के साथ घूमने वाले सज्जन ने बहुत गम्भीर होकर कहा—'होगी। यहीं कहीं होगी। ढूँढिये।' हद दरजे की जबर्दस्ती थी। सकल-सूरत में शरीफ और काम ऐसा। चुप रह जाने के अतिरिक्त दूसरा चारा न था।

कई वर्ष पूर्व की बात है। मेरी एक कहानी, जो काफी लम्बी भी थी, 'पराग' मे निकली। यह पत्र कुछ साहसी मित्रों ने साहित्यिकता के झोंक मे आकर जलेबी के पैसे बचा-बचाकर निकाला था। 'पराग' के सम्पादक बहुत खुश हुए। उन्होंने मुझे लिखा कि मैं उन्हें कहानियाँ अवश्य दिया करूँ। मेरी हास्यरस की कहानियाँ अकसर घर पर लिखने के बाद कुछ दिन भी रुकना पसन्द नहीं करतीं, इधर-उधर छप-छपा के ही रहती हैं। मैंने उक्त सम्पादक का आशीर्वचन या निवेदन जो कहिए, सिर चढाया और दूसरे मास एक कहानी फिर लिखी, उसी 'पराग' में। एक का शीर्षक था—'चटपटचन्द चट्टोपाध्याय'। दूसरे का शीर्षक था—'औगुन'। कुछ ही महीने बाद मैं क्या देखता हूँ, मेरी दोनों कहानियाँ नगर के एक प्रतिष्ठित पत्र मे थोडे से हेरफेर के साथ ही छप चुकी हैं। पहली कहानी 'चौबे की चौडाई' शीर्षक से 'गुलशन' नामक] लेखक का यश बढा रही है, दूसरी उसी अंक के बाद के अंक में 'दुर्गुण' शीर्षक से उसी 'गुलशन' जी की विमल यश-कीर्ति में चार-चाँद लगा रही है। मैं तो देखते ही चारोखाने चित हो गया। तुरत कपडे-लत्ते पहन सम्पादक जी की

टेबुल पर जा धमका। कहानी की कहानी सुनायी। सम्पादक जी बहुत घबराये। उन्हें मेरी कहानी की कम, अपनी प्रतिष्ठा की चिन्ता अधिक थी, क्योंकि मैं तुरत दैनिक के सम्पादक को पत्र लिखकर भण्डाफोड़ कर सकता था। काफी चिरौरी के बाद मामला तै पाया कि उक्त 'गुलशन' महोदय माफी माँग लें।.. लेकिन कई वर्ष से ऊपर हुए 'गुलशन' से मेरा न साक्षात हुआ और न किसी परिचय और 'माफी' का गौरव ही मुझे मिला; कदाचित उन्हीं दोनों कहानियों के प्रकाशन के बाद 'गुलशन' नाम भी साहित्य से पोंछ दिया गया। क्या हुआ, क्यों हुआ, खुदा जाने।

दुनिया मे दो रोग ऐसे हैं, जिनकी दवा अभी तो किसी ने तैयार नहीं की, आगे ईजाद हो जाय तो कोई कह भी नहीं सकता। एक का नाम है टी० बी० और दूसरे रोग को लोग 'छपास' कहते हैं। 'छपास' ऊँचे दरजे का एक साहित्यिक रोग है। यह क्यों और कब कैसे बढ़ा, काफी विवाद का विषय है। इस विषय पर मैं विशेप प्रकाश या अंधकार नहीं डालना चाहता। ऐसे लोगों की संख्या भारतीय जन-संख्या की तरह बढ़ रही है जो लिखते कम और चाहते हैं अधिक। आशा से भी बढ़-चढ़कर। किसी मासिक या साप्ताहिक पत्र के कार्यालय में यह भलीभाँति आँका जा सकता है कि बाहर से आनेवाले अधिकांश लेखकों मे नौसिखुओं और चोरी से काट-कूटकर भेजनेवाले शौकीनों के लेख अधिक रहते हैं। लेख पढ़ते ही चट आपको पता लग जायगा, बशर्ते आप पता लगाना चाहें, कि लेखक महोदय अध्ययन की प्रवृत्ति ताक पर रखकर लेखनी उठा रहे हैं। परिश्रम से तो दुनिया सौ योजन भागती है, फिर उनके लेख में तनिक भी परिश्रम न हो तो उनका क्या दोप? साथ ही अपने राम हाथ जोड़कर कह देना चाहते हैं कि नये लेखक अपनी लेखनी

की आजमाइश खूब करें, साथ ही यह भी गाँठ बाँध-लें कि कुछ दिन लिख-लिखकर फाडना पडेगा। बिना इस क्रिया के, त्याग के 'लीडरी' नहीं मिलती, यश नहीं मिलता।

सम्पादक जिस कुर्सी पर बैठता है, वह भाँग पीकर बैठने वाले की कुर्सी नहीं है कि जो दफ्तर मे आया छपता जा रहा है। एक महोदय, (आप के नाम के आगे 'एम० ए० भी लिखा था, मैंने पता नहीं लगाया कि आप एम० ए० हैं या नहीं; पर लिखा था अवश्य। हालाँ कि आप के एम० ए० होने मे मुझे आज भी शक है।) सम्पादक को पत्र लिख रहे हैं। 'मान्यवर सम्पादकजी महोदय, मुझे आप के अखबार का लेख पढ़ते ही ऐसी प्रेरणा मिली कि मैंने भी उसी क्षण एक कहानी तैयार कर ली। आशा है आप अपने समाचार पत्र मे इसे छपवाकर अवश्य ही मेरा उत्साह बढायेंगे। अवश्य, अवश्य छाप दें, बडी दया होगी।'

इस पत्र में वाक्य तो अशुद्ध नहीं, लेकिन लेख पढते ही कहानी के लिए प्रेरणा मिलना और झटपट उसका निर्माण, कुछ क्या, बहुत अधिक असगत-सा लगता है। पत्र लेखक को दया और कृपा मे, एम० ए० पास हो जाने पर भी क्या अन्तर है, पता नहीं। 'अवश्य' 'अवश्य' 'अवश्य' के कडे निवेदन का भी सम्पादक के लिये कोई तुक नहीं। लेकिन नाम होना ही चाहिये। इधर-उधर से उ.ायी हुई वस्तु छपनी ही चाहिये।

मान लीजिये, मैं नया लेखक हूँ। इससे क्या? मुझे क्या गरज गयी है कि मैं यह पता लगाने चलूँ कि मेरे 'स्टैन्डर्ड' (स्तर) का हिन्दी मे कौन पत्र है जिसकी गोद मे अपनी रचना का सिर रख दू तो शायद वह प्रकाशित कर मुझे और भी लिखने के लिए उत्साहित करे, और न मैं यही पता लगा सकता हूँ, कि कई घण्टे

के उत्साह और परिश्रम के बाद कागज को कलम से धमका-धमका कर मैंने जो चीज प्रस्तुत की है उसमें कितनी छटाँक मौलिकता है और कितनी छटाँक मिलावट। सम्पादक विशेष बेवकूफ नहीं होते, वह भी नम पहचानते हैं, आँखों से आँख मिलते ही जान जाते हैं कि कौन कितने पानी में है। फिर रचना तो रचना ही है। लेख पहुँचते ही ज्ञात हो जाता है कि यह 'फ्रटकटेड' माल है या नहीं।

साहित्यिक डकैती कोई नया मर्ज नहीं है। बहुत पुराना बाप-दादों के समय का है। बड़े-बड़े साहित्य-निर्माताओं और ग्रन्थकारों ने इस कला का सहारा लिया है। गोस्वामी जी जैसे महान कवि ने तो साफ साफ लिख भी दिया है कि वे कहाँ-कहाँ से 'रस' बटोर रहे हैं। किन्तु आँख में धूल झोंककर अपना बना लेना साहस का ही काम है और है हिन्दी-साहित्य के इतिहास में उल्लेखनीय। श्री शिवमूर्ति मिश्र 'शिव' की एक कविता, जिसकी पहली पंक्ति है—'झूलते हैं, प्राण मेरे नयन मे झूला पड़ा है।' को ठीक सावन मास में सामयिकता का जामा पहनकर अँधेरी रात में भी नहीं, दिन-दहाड़े एक सज्जन ने छपवाया अपने निजी पत्र में—

'झूलते हैं प्राण मेरे गगन मे झूला पड़ा है।'

इसी को कहते हैं मधुर साहित्यिक डकैती। बड़े और प्रसिद्ध कहलाने वालों में भी यह रोग बड़े पैमाने में है। अंग्रेजी का विशुद्ध अनुवाद दे देना तो नामी-गिरामी लेखकों और कवियों का नित्य का कर्म हो गया है। हमारे प्रिय कवि पन्त ने भी अँग्रेजी और बँगला की कई पंक्तियाँ हूबहू उठाकर रख ली हैं। मोह संवरण हो नहीं कर पाये हैं। निराला जी ने अच्छा फर्दाफाश किया है।

बिहार के प्रसिद्ध कवि गोपाल सिह नेपाली की रचनाएँ, उन दिनों जब वे सिनेमा मे गायक नहीं हो गये थे, कई कवियों के कविता-निर्माण मे सहायक हुई थीं।

कहानियो की कहानी तो कुछ पूछिये ही नहीं। माया की कहानी महिला मे किसी लडकी के नाम से छप जाय तो आश्चर्य करने की क्या बात ? यदि किसो कवि-सम्मेलन मे 'शीश' जी की 'सिह और शिकारी' रचना 'ईश' नाम से कोई सज्जन गरज-कर सुना जायॅ तो क्या उस समय सभापति जी उन्हे मच से हटा देंगे ? यह तो है हमारा हिन्दी साहित्य। अब अखबारो पर आ जाइये। 'माहेश्वरी' 'आज' जैसे राष्ट्रीय और प्रतिष्ठित पत्र से 'पेन्सिलिन' लेख उद्धृत तो कर ले, लेकिन 'कापीराइट' को गोली मारकर 'आज' का नाम भी न दे। क्या 'आज' इसके लिए न्यायालय जायगा ? श्रीमती कमलात्रिवेणी शकर (प्रसिद्ध कहानी लेखिका) की 'फाउन्टेनपेन' शीर्षक कहानी 'युगान्तर' मे बिना किसी चूँचरा के उद्धृत कर ली जाय तो इसे क्या कहेंगे ? सब साहित्यिक डकैती ही तो है।

इतना ही नहीं, इस डकैती का क्षेत्र और भी लम्बा है। कोई हिन्दी-पत्र आज के युग मे किसी लेखक की रचना लिखा-कर प्रकाशित करे और पारिश्रमिक की दर ठीक कर उसे न दे तो क्या लेखक बिचारा दस-बीस रुपये के लिये अदालत जायगा ? 'अभ्युदय' इलाहाबाद की छाती पर मालवीयजी का पुण्य-स्मारक था, राष्ट्रीय प्रगति का अग्रदूत साप्ताहिक। लेकिन क्या कोई यह उम्मीद कर सकता है कि वह किसी लेखक से फरमाइशी चीज लिखाकर छापकर भी उसका पारिश्रमिक हडप चुका है।

इस लेख के लेखक ने कम्युनिस्टों पर 'अभ्युदय' के सम्पादक के निवेदन पर फरमाइसी 'मजाक' लिखा, एक प्रहसन। कामरेड

की कमाई' जिसका शीर्षक है। वह छपा भी। मगर पारिश्रमिक के सम्बन्ध मे आज तक चुप्पी ही रही। यह बहुत बड़ी डकैती है, कदाचित साहित्यिक डकैती है।

काफी बड़ा लेख लिखने से यदि मैं वह काम कर लूँ, जिसे किसी स्वतन्त्र देश की सरकार क्षण में किया करती है तो अचरज होना चाहिये। इसी कारण अब अधिक पर्दाफाश न करते हुए साहित्यिक डकैती और 'छपास' की प्रवृति का नाश तो देखना ही चाहूँगा। यदि 'साम्राज्यवाद' के साथ साथ इस प्रवृति का भी नाश हो जाय तो हिन्दी जगत के लिए कितनी कल्याणकारी स्थिति पैदा हो जाय, कल्पना नहीं की जा सकती। हाँ, अन्तिम बात, इस लेख में उल्लिखित सज्जनों से क्षमा तो चाहूँगा ही।

अपनी जबानी

दिनकर

वादों में जो स्थान धन्यवाद का है, नगरों मे नो स्थान बम्बई का हो गया है, खिलौने मे जो स्थान पटाखे का होने वाला है और हथियारों में जो स्थान ऐटम बम का होगा, हिन्दी-जगत में ठीक वही स्थान मेरा है । मैं हिन्दी का पुच्छलतारा हूँ, लेकित मुझे लोग रवि कहते हैं। कहने वालों की मेहरबानी नहीं। बल्कि मैंने अपना नाम ही दिवाकर सूर्य्य का पर्यायवाची रख लिया। कोई मेरा क्या बिगाड लेगा ? हिन्दी मे 'सूर' सूरदास थे, दिनकर मैं हूँ। सिनेमा मे चमकने की इच्छा हो रही है। सिनेमा प्रातः-काल की रानी ऊषा का निवास-स्थान है। उषापति मैं हूँ। मुझे लोग समझ बूझकर दिनकर कहते हैं।

मैं उछल कूद का कवि नहीं, मैं तडक भडक का कवि नहीं, मैं दिल्ली का कवि हूँ। दिल्ली रानी मेरी प्रेयसी है। मैं मास्को पर कविता नहीं लिखता, मुझे वैशाली से इश्क है। हिमालय से दोस्ती है। मैं हिमालय को उछालने वाला हूँ। तूफान मेरे शब्दों में बँधे झूलते रहते हैं। बवण्डर मेरी जीभ मे सोता रहता है। भूचाल मेरी आँखों की कोर मे है। प्रलय का मैं आशिक हूँ। नई दुनिया का माशूक हूँ। मैं विस्फोटक पदार्थ हूँ। ऐटम बम मे मेरी कविताओं के भी एलेक्ट्रान प्रोटोन तोडे और मिलाये गये हैं।

मैं भयंकर प्रलयंकर शंकर का चेला, भवानी कालिका क्रान्ति का अकेला बेटा हूँ।

मैं कांग्रेस सरकार का एक अहलकार हूँ। भारत-सरकार का एक पुर्जा भी। मैं शोलो को सीने में दबाये सोने वाले भारत का एक क्रान्तिकारी भक्त हूँ। मैं एक शरीर, दो प्राण हूँ।

मैं बिहार की छाती पर; पटना नगर की नाक पर; हिन्दुस्तान के कन्धे पर विराजमान हूँ। मैं बिहार की नाक रखता हूँ; पटना का कण्ठ बनता हूँ; हिन्दुस्तान को जगाता हूँ, पाकिस्तान की नाक काटता हूँ। मैं बिलकुल बेकार नहीं रहता। मैं स्रष्टा हूँ।

मैंने 'रेणुका' से न जाने कितने हीरे पैदा किए, मैंने अपनी 'हुकार' बिहार के घर-घर पहुँचायी, मेरी 'रसवन्ती' को कौन भूल सकता है, मैंने थोड़ा दिया, मगर ठोस। मैं 'मैं' हूँ। मैं महान हूँ।

मैं सम्पादन भी कर लेता हूँ, सभापतित्व भी कर लेता हूँ, मैं लेख भी लिख लेता हूँ, भाषण जरा सकुच कर देने आता है, मैं कविता पढ़ता हूँ तो 'दूध' बह उठता है।

मैंने सरपटवाद को ऐसी घुड़की सुनायी, कि उसका दिमाग ठिकाने आ लगा। मैं प्रथम अपनी रसोई के चूल्हे पर कविता लिखकर; तब मौका मिलने पर मास्को के चूल्हे पर भी लिखूँगा। बलिदानी बहादुरशाह 'जफर' की दिल्ली, अन्ततः मुझे मिल ही गयी।

बच्चन

मैं? मैं छिपा हुआ व्यक्ति नहीं, बल्कि हिन्दी-जगत से छिपकली की तरह चिपका हुआ कवि हूँ। मैं बिलकुल कवि हूँ। अन्य लोगों

मे यह शक भी हो सकता हे कि वे कवि हैं या नहीं, किन्तु मेरे बारे मे कोई बुद्धिमान पुरुष शक नहीं कर सकता। मै कवि हूॅ, कवि।

मैं हाला, प्याला, मधुशाला, मधुबाला 'बाद' का बाप, निशा को पत्र लिखने, निमन्त्रण देने वाला पागल, एकान्त मे सगीत टेरने वाला विसुध; और भी न जाने क्या-क्या हूॅ।

मैं आपबीती लिखता हूॅ। गद्य कम लिखने आता है, अत सब पद्य में ही लिख देता हूॅ। मैं जब सुखी होता हूॅ तब झूम-झूम कर लिखता हूॅ, दुःखी होता हूॅ तब रो-रोकर लिखता हूॅ। मैंने रोनेवाली ऐसी धारा बहायी कि भारत के युवकों मे रुदन भर-सा गया। मगर एक बात है; जब मैं गाने लगता हूॅ तब मेरा रुदन का सगीत लोगों को मस्त झूमने के लिए बाध्य कर देता हे।

मैंने हिन्दी साहित्य को बहुत कुछ दिया, लेकिन अभी हिन्दी साहित्य मे मेरा स्थान ढूॅढा जाता है। यह तो मैं खुद जानता हू कि पन्त, महादेवी, निराला की पक्ति में मैं नहीं घुसना चाहता, लेकिन मैं यह कब मानने को तैयार हूँ कि मैं बिलकुल बीता कवि हूँ; या जल्द ही हिन्दी जगत से हट जाऊँगा।

मैंने अब फिर प्रेम प्राप्त कर लिया है। घबडाने की कोई बात नहीं है। 'सतरंगिनी' देख रहा हूॅ और यह भी समझ चुका हू कि 'नीड़ का निर्माण फिर-फिर' होना ही चाहिये। 'जो बीत गयी सो बात गयी' इसलिए सिर पटक कर फोडना न चाहिए।

मैंने अब चाह नवल, राह नवल, रग नवल, ढग नवल सब कुछ तो देखा। मैं दुनिया में अभी जाने क्या क्या देखूॅगा। मेरा बहुत नाम है। पन्त जी का नाम अभी मेरे जितना नहीं है।

जब कहीं कवि-सम्मेलन की तैयारी की जाती हे, तब सयोजक कवियों की सूची में सबसे प्रथम मेरा नाम लिखते हैं, चाहूॅ पहुँचूॅ या न पहुँचूॅ। मैंने देखा कि हिन्दी-जगत में बडा अन्धेर है,

कवियों को कुछ बगैर दान दक्षिणा दिये ही लोग घसीटे लिये जा रहे हैं और उनसे कविता गवाते हैं। यह देखकर मैंने अपना 'रेट' बनाया।

मैं साहित्य निर्माता तो हूँ ही, प्रकाशक भी था। पण्डित रामनरेश त्रिपाठी, यशपाल और मैं एक ही कैंड़े के 'जीव' हैं। मैं निराला जी की तरह अपना सर्वस्व प्रकाशकों को बेंचकर घण्टा हिलाने के लिए कतई तैयार नहीं। मैं बुद्धिमान जन हूँ।

मैं हिन्दी का कवि, अंग्रेजी का प्रोफेसर, हृदय का भावुक और शरीर का फौजी हूँ। मैं बहुत कुछ हूँ।

नन्ददुलारे वाजपेयी

मैं खराद का काम करने वाला एक साहित्यिक हूँ। मैं खरा पहचानता हूँ, खोटा भी, चाबुक भी खूब चलाता हूँ। मार्जन आवश्यक समझता हूँ। मैं समालोचक हूँ।

मैं ब्राह्मण हूँ, उपदेश नहीं देता, मैं प्रगतिशील नहीं हूँ। मैं प्रगतिशील लेखक संघ से सौ योजन और तीन मील दूर हूँ।

मैं प्रगतिवादी बनकर हिन्दी में नहीं आया। मैं प्रगतिवादी लेखकों, कवियों का साथी हूँ। गुरु हूँ। मैं जो कुछ हूँ, वह मेरा प्रगतिवाद है। मैं प्रगतिशील, किन्तु 'ठोस' भाषण देता हूँ। एक शब्द, एक मिनट पर बोलता हूँ। व्याकरण की शुद्धि-अशुद्धि का ध्यान रखता हूँ। मेरा प्रगतिशील लेखक संघ मेरे अतिरिक्त दूसरे को अध्यक्ष नहीं चुनता। मैं साहित्य के आदर्श पर अच्छी तरह बोल लेता हूँ।

मैंने प्रेमचन्द जी को भी सुनाया है, पण्डित रामचन्द्र शुक्ल को 'हम-उमर' बतलाया है, निराला जी से दोस्ती है, 'अंचल को सिखलाया है। आज से दस वर्ष बाद प्रगट होने वाले समालोचक

मेरे शिष्य ही होंगे। मेरे शिष्यों मे आत्म-विश्वास चौंसठ पैसे से भी अधिक है।

मैं यह भली-भाँति जानता हूँ, जब मैं और स्वर्गीय रामचन्द्र शुक्ल एक साथ अध्यापक थे, तो उनकी कुर्सी उतनी ही ऊँची थी, जितनी मेरी। हिन्दी-साहित्य का इतिहास पण्डित शुक्ल ने पहले लिख दिया, अन्यथा मै ही लिखता।

मुझे यह भी विश्वास है कि हिन्दी-साहित्य मे जब तक एक समालोचक दूसरे साहित्यिक पर कुछ न कहे तब तक वह आगे नहीं आ सकता। मुझे आगे ढकेल कर नहीं किया गया है, मैं स्वतः आगे आया हूँ। मैं चिन्तन करता हूँ, मजाक नहीं है। जब मैं भाषण देता हूँ तब हिन्दी के सभी पारिभाषिक शब्द एक बार सुनायी पड़ जाते हैं। शब्दों की शक्ति और महिमा मैं भली-भाँति जानता हूँ।

मुझे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का सभापतित्व सौंपने के लिये न जाने कितने लोग सोच रहे होंगे, लेकिन उस ओर से मैं बिलकुल उदासीन हूँ। मैं साहित्यिक आवारा बनना भी तो नहीं चाहता।

सम्पादक मेरे लेखों को ठीक उसी प्रकार नहीं पा सकते, जिस प्रकार श्रीमती अरुणा जैसे फरारों को पुरानी सरकार। मै उस स्टैण्डर्ड का लेखक नहीं, जिन्हे कालम गिनकर पारिश्रमिक मिला करता है। मैं तो शब्द गिनकर रुपये लेता हूँ। मै जो कुछ लिखता हूँ। सब छपने योग्य होता है। सब छापा जाता है।

मैं नये लेखकों की पुस्तक की भूमिका लिख देता हूँ।

गोपालसिंह नेपाली

मेरी मातृभाषा नेपाली है, लेकिन मैं हिन्दी का 'वर्ड्सवर्थ' हूँ। मेरी पोशाक हिन्दुस्तानी थी, लेकिन मैं उसे अंग्रेजी बना डालने के

पक्ष में हूँ। हिन्दुस्तानी बन कर हिन्दुस्तानी क्या तरक्की करेगा ? मैं तरक्की कर चुका हूँ। क्योंकि मैं हिन्दुस्तानी नहीं हूँ।

मेरी नकल होती है। मेरी कम, मेरे गले की नकल अधिक। मेरे गले की नकल कर कितने कवि तैयार हो गये, कितने कलाकार बन गये, अभी मेरी कविता की नकल कर न जाने कितने कलाकार पैदा होने वाले हैं। मैं नयी टेकनीक, नयी शैली और नयी गति हिन्दी को दे रहा था, कि इसी बीच मुझे सिनेमावालों ने धर दबोचा। मैं सिनेमा-जगत में हिन्दी के उद्धार का ठीका लेकर आ पहुँचा हूँ।

मैं नेपाल की तराई और हिमालय की उपत्यका छोड़ कर बेतिया से बम्बई पहुँच गया। मेरे बहुत से दोस्त बनारस में रहते हैं। मेरी तरक्की देखकर फूले नहीं समाते।

मैं मस्ती का कलकल गान हूँ। मैं जब कविता सुनाता हूँ तब मस्त हो जाता हूँ। मैं एक बार बनारस के 'चित्रा' सिनेमा-भवन में कविता सुना रहा था, निराला जी मेरी स्वर-लहरी सुनकर मस्त हो गये; उन्होंने कहा था—'इन्हीं लोगों का जमाना है, भाई।' मैं तब बहुत खुश हो गया था।

मैं छन्दों पर शासन करता हूँ, ठीक वैसे ही जैसे भारत सरकार देश पर। बात यह है, मैं छन्दों का बन्धन नहीं मानता। क्यों मानूँ ? जब मेरे पास गला है ही, तब घबराहट किस बात की ?

मैं 'पञ्चमी' के बाद 'नीलिमा' का प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहता था, सो पूरा हुआ। 'नवीन' कृतियाँ प्रसव करना अपना धर्म समझता हूँ। मेरा 'नवीन' औरों के नवीन से सौगुना आगे है।

समालोचकों की कृपा मेरे ऊपर नहीं रहती। प्रेमचन्द जी से मेरा परिचय था, लेकिन लड़कपन मे। फिर 'हंस' से उन्होंने मुझे काफी ऊपर भी उठाया।

मैं छायावादी नहीं, मैं सरपटवादी नहीं, मैं रहस्यवादी नहीं लेकिन समझने वाले सब कुछ समझ जाते हैं। मैं प्रगतिशील कहलाने का अपने को अधिकारी समझता हूँ। राजनीतिक काव्य की ओर जब लोगों ने ठेल दिया तब लजाना क्या ? 'आग पर चलो जवान, आग पर चलो' मेरा उपदेश है।

दूसरा उपदेश मैंने दिया है, 'तुम किशोर कल्पना करो'–'तुम नवीन कल्पना करो।' मैं फिल्मिस्तान को सॅभाल रहा हू, हिन्दी-साहित्य सॅभालने का ठीका बन्द कर दिया। 'मूड' आता है तब लिख देता हूँ। बम्बई के चौपाटी के नजारे पर भी कविता लिख देता हूँ, कभी-कभी खुशी से, कभी-कभी जबर्दस्ती भी लिखना पड़ता है। सिनेमा के गीतों के निर्माण में जो आनन्द है, वह और कहाँ ?

जैनेन्द्र कुमार

मैं ? मैं तो बिलकुल 'मैं' हूँ। मैं क्या हू यह तो मैं न जानूँ हूँ। पर यह जानूँ हूँ कि मेरा मैं 'जैनेन्द्र' है। पर जैनेन्द्र का मैं जानना सरल नहीं। साहित्य और जीवन की टकराहट जो जान गया वह मुझे जान गया। मैं साहित्य की टकराहट जानता हू। अच्छी तरह जानूँ हूँ।

फिर साहित्य और संघर्ष। संघर्ष का नाम ही द्वन्द्व है और जब द्वन्द्व है तो साहित्य प्रस्तुत है। द्वन्द्व की सफल अभिव्यक्ति ही तो मेरी कहानियाँ हैं, मेरा 'मैं' जिनमे निहित है और जब मेरा 'मैं' निहित है तब यह भी सम्भव है कि मैं दो की सत्ता

रखता हूँ। दो की सत्ता विना संघर्ष या द्वन्द्व कहाँ ? और जब दो की सत्ता है तब प्रेम है।

'हाँ, तो मैं कह रहा था—इस दो की सत्ता पर, अपने मैं पर। फिर यह भी तो मानूँ हूँ कि मेरे 'मैं' के अतिरिक्त भी एक वस्तु है। एक प्राण है और वह है—'सुनीता'। मेरी 'सुनीता' मेरी सफल अतृप्ति है और सब जानते ही हैं, अतृप्ति की तृप्ति में ही जीवन की क्रिया है।

जीवन की क्रिया की अभिव्यक्ति ही तो जीवन-दर्शन है और जीवन-दर्शन को मैं कला मानता हूँ। मैं दिल्ली में रहूँ हूं कला के सन्निकट ; विलकुल कला का आश्रय भी तो मैं न लूँ। आश्रय क्यों न लूँ ? क्योंकि अधिकांश कला को प्रेरणा की ही देन मानूँ हूँ। नारी प्रेरणा का स्रोत है। नारी की सफलता भी तो इसी में है। सुनीता नारी का प्रतिनिधित्व करती है। फिर, नारी की सम्पूर्णता भी तो उसी में है।

'परख' की पूर्णता, 'सुनीता' की अतृप्ति मेरा जीवन-दर्शन है। हिन्दी-साहित्य का कला-दर्शन है। एक बात ; मैं क्या लिखूँ हूँ यह तो मैं न जानूँ, पर यह अवश्य जानूँ कि हिन्दी साहित्य को उस पर नाज है। डा० रामविलास शर्मा को उस पर गर्व है। महादेवी जी उसे पढ़ती नहीं, देख लेती हैं।

मैं न फिलासफर हूं न वनना चाहूँ। कहानियों में 'मैं' लेकर आता हूं, उपन्यासों में 'मैं' खोकर जाता हूँ—इतना ही कहूँ हूँ।

मैं अब कुछ खोया-खोया-सा हूँ। क्योंकि मेरा 'मैं' कुछ उलझा-उलझा-सा है। मुझे हिन्दी-जगत में कुछ वैसा-वैसा-सा लग रहा है। मैं कुछ और न कहूँ हूँ। क्योंकि मैं मैं हूँ और मेरा मैं जैनेन्द्र है।

चौराहे पर

'जै गोपाल !'

'जै गोपाल !'

'बाजार को रङ्ग-ढङ्ग ?'

'ढील-ढाल।'

'वही इधर भी। जब जरा माल काटने को मौका मिल्यो तब जैसे न जाने कहाँ से यह आफत। दङ्गे की बयार ऐसी चल्यो कि तर-ताबड़ नस का ताब बिगड़ गया।" बड़े सेठ ने फरमाया। चुन्नटदार कुरते की बाँह मोड़ने लगे। लेकिन वह बेचारी फिर बह कर कलाई को घड़ी छिपाने लगी।

'तार ह। काट पर है। दुइ से छः होय गवा है। चढ़ती पर अण्टा चित्त। (कुछ-कुछ मोड़ते हुए) पासा तो वे भाव। गिनी भी मारा ह। गट्टा पर। (मुँह से गिरते हुए पान को पोंछते हुए) सेठ लो, कुछ लिहो। मारो न। गट्ट पर गट्ट कुछ एक सा पिछत्तर जायो। रुकिहो ?'

बड़े सेठ ने फिर सिर से काली टोपी उतार हाथ में ले जवाब दिया—'का भवा ह। रुक जइहा। चढ़ती पर जाय रहा है। निखरने देव। तयारी का हाल बखाने हो ?'

'गाल ह। सा पीछे तोण आणो।' मुँह विचक गया। सेठ को डरा कर।

'चाँदी गोल। पाटला अण्टा-चित्त। नगदी टाणो है। बोल्यो ? लियो ?'

'नो। नो। मेरे को रुकणो है।' और एक ओर चल पड़ा।

'सेठ से बोलियो नहीं। डाउन है डाउन।' दूसरा भी एक ओर चल पड़ा।

× × ×

'वालेकुम सलाम।'

'सलाम वालेकुम।'

'म्याँ, साली प्याज भी आसमाँ चूम रही है। छो आने। अल्ला रहने देगा ? और इधर असगर है कि हवालात के मजे ले रहा है। वेटा को समझाया—गुण्डों की लिस्ट में न घुस्यो। निगाहे तेज हैं।'

म्याँ, तसल्ली ने जवाव में फरमाया—'इधर तो रेजा वकस में वन्द पड़ा है। सात रोज हुआ—कोठी गये। रास्ता पर साली पुलिस। न इधर जाव। न उधर जाव। कारीगरों का देना वाकी पड़ा है। और न एक टुकड़े की कोई आमद है। अल्ला की कसम जान दरवे में दवी पड़ी है। राशन काट गुम हो गवा है। विजुली का रङ्ग उतर गवा। वडे म्याँ घर से निकलो तो कैसे निकलो ? रूह भितरै की भीतर अँड़स गयी।'

काफी चुप्पी के वाद वरखतुल्ला ने कहा—'रोजा ठप समझो। वाजार पर ताला कर्फ्यू के वाद भी महीने भर रहि है। खोलने के लिए हिम्मत चाहियो, म्याँ।'

'वही अल्ला है।'

'अल्ला भी क्या कुश्ती लड़े ?'

'टिक्कस भी घमाघम लगा है। नस ढील करने के लिये। समझो।'

'समझौ।'

'कांग्रेस करावै है।'

'लीगौ ना करावै है?'

'दानों को खुराफात हौ, म्याँ। अंग्रेजवै सब ठीक। अमनो-अमान। बिलेक भी धड़ाधड।'

'गुल्लू का बिटाई का कारखाना बन्द हो गया। बिलेक पिछड रहा है। कौन सिर कटवावै?'

'मेल मिलाप कुमेटी में चलिहो?'

'तूही जइहो।' और आखिरी सलाम के बाद दोनों की पीठ एक दूसरे को देखने लगी।

× × ×

'नमस्कार!'

'नमस्कार!'

'काफी दिन पर दिखे जैसे ईद के चाँद हो गये हैं।'—शरदेन्दुजी ने पूछा।

'ईद के चाँद नहीं। सूर्य्य के धब्बे क हये।' करुणाशंकर बी० एस० सी० ने कहा।

'क्या लिख रहे हैं?' कविजी ने पूछा।

'चुम्बक खींचता क्यों है,' फिलहाल थ्योरी रख रहा हूँ बाद में 'डीटेल' में एक किताब दूँगा।' करुणाशंकर ने उत्तर दिया।

'मैं भी एक अदृश्य चुम्बक यानी प्रेम की थ्योरी रख रहा हूँ। बाद में प्रैक्टिकल रखूँगा। अभी तो कभी-कभी 'एक्सपेरिमेण्ट' कर लेता हूँ। तीन प्रयोग कर चुका हूँ।' शरदेन्दुजी के झोंटे को बेतकल्लुफ अनामिका ने हटाया। वे जरा लचक गये।

'आप लोगों का सम्मेलन होने को था ?' करुणाशंकर बोले।

'हाँ, दङ्गा था, गर्मी का मौसिम था। पहाड़ नहीं था। पैसा था। राय नहीं थी। फिर कभी होगा।' कविजी ने कहा।

'इधर अमेरिका जाने का विचार है। बता सकते हैं, कोई पैसा वाला कैसे फँस सकता है ? दो ढाई हजार तो खुद जुटा लूँगा। बाकी किसी उल्लू मेहरबान से।' बी० एस० सी० जी बोले।

'मैं प्रोग्रेसिव हूँ। दरबारी कवि नहीं। 'हंस' में भी मेरी कुछ चीजें निकल चुकी हैं।'—शरदेन्दुजी ने कहा।

बातचीत में कुछ लज्जत न देखकर दोनों की पीठ एक दूसरे को देखने लगी।

× × ×

'नमस्ते।'

'नमस्कार।'

'पालागी।'

'जिओ। मस्त रहो। आप आजकल कहाँ हैं ? आपका चेहरा कैसा हो गया है ? बीमार थे क्या ?'—पण्डितजी ने सवालों की झड़ी लगा दी।

'बनारस रहता हूँ। अखबार में काम करता हूँ। बीमार तो अवश्य हूँ। इसी से चेहरा आपको पसन्द नहीं आ रहा है। और सब कहिये ?'—मैंने कहा।

'ओ ऽऽऽ। बनारस छोड़ दीजिये। मर जाइयेगा। छूरा चल रहा है। नयन-बाण चल रहे हैं। राशन नहीं मिल रहा है। शाम को घूमना बन्द हो गया है। फिर चेहरा बिगड़े न तो क्या हो और फिर अखबार का काम। दिन-रात कुचुर-कुचुर। टी०

बी० से बचिये। देहात की हवा लीजिये। फावड़ा कुदाल उठाइये। बाँह कलम उठाते-उठाते खराब हो गयी है। डटकर भैंस चराइये। दूध पीजिये। आप अपने पिता के अकेले हैं। सैकड़ों मन अनाज पैदा हो रहा है। उसे आप डेढ सेर के भाव से बेचिये। यह सुनहला मौका फिर कब मिलेगा? रुपया काट के रख दीजियेगा। शहर की नौकरी मे क्या रखा है? जी आवे तो रात को विदेशिया की नौटङ्की देखिये।' पण्डितजी एक साँस मे बोले।

'आप ठीक कहते हैं।' मैंने उनकी बातों से पिण्ड छुड़ाना चाहा।

'सुना है, आप कविता भी जोडते हैं।'

'जी, कुछ-कुछ।'

'फिर सावन आ रहा है कुछ कजलियाँ लिखिये। काम देंगी।'

'अच्छी बात।'

'हाँ, हाँ। शहर छोड़ दीजिये। देहात की हवा लीजिये।' और वे एक गली मे चले गये।

× × ×

'जै सिया राम।'

'जै जै सिया राम।'

'जै सिया राम।'

'जै सिया राम, भाई।'

'लड्डू? हैं सरकार। पावभर?'

'महावीर विक्रम बजरंगी।
कुमति निवार सुमति के संगी।'

'संकटमोचन भगवान् की कृपा है।'

'जै जै सिया राम।'

अखिल भारतीय कुत्ता-सम्मेलन

एकादशी की दोपहर थी। कुछ लोग निराहार थे, कुछ लोग अपनी टाँगों मे 'कायदेआजम कसाईखाना' से एक-एक गोश्त का टुकड़ा बाँधते आये थे। कुछ लोग एकादशी के दिन अनाज भी खाने के पक्ष मे थे, लेकिन चावल जैसा दानेवाला पदार्थ खाने के पक्ष मे बिलकुल न थे। ऐसे लोगों को संयोजक ने पास की बस्ती से जूठी रोटियों का कई खँचिया टुकडा बटोर कर रखा था। सभापति के लिए, नगर में किसी की तेरही के दिन जो हाल मे ही बनस्पती की पूड़ी इकट्ठी की गयी थी, एक साफ जगह सजाकर रखी गयी थी। सभापति इलाहाबाद का एक पुराना कुत्ता था, जिसकी जीत २०३ अधिक वोटो से हुई थी। पुट्ठे, टाँगें सभापति महोदय की इतनी प्रौढ थीं कि यदि दो-चार लाठियाँ साथ ही पड़ें, तो भी टस से मस न हों।

संयोजक के पद पर बनारस के मशहूर मुहल्ले का मशहूर कुत्ता था। यह कुत्ता कई कारनामों के कारण अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुका है। जिस स्थल पर बैठकर यह अपनी रात बिताया करता है, मजाल नहीं कि पुलिस का एक सिपाही भी गश्त मे गुजर जाय। इसे मुहल्ले मे लोग 'मुँहझौंसा' कहते हैं लेकिन लिखा-पढी मे इसका नाम श्री मुँहझौंउसराय हे।

सम्मेलन काशी में गगा और बरुणा के संगम पर निछद्दम

में हुआ। सभापति के लिए बिल्ली की बाल-सहित खाल का पवित्र आसन रखा गया था। सम्मेलन में जितने भी कुत्ते आये थे, सभी शिष्ट थे, तगड़े थे और भूँकने में प्रथम श्रेणी के थे, पहले ही दिन उपस्थिति इतनी मनोनुकूल थी कि संयोजक महोदय का सीना गर्व से फूल उठा। लाउडस्पीकर की कोई जरूरत न थी, क्योंकि संयोजक, प्रस्तावक और सभापति सभी एक से एक ऊँची और गम्भीर आवाजवाले जीव थे।

बाकायदा भौं-भौं के बीच निर्वाचित सभापति आसन पर बैठे। दो राजघाट किले की कुत्तियों ने स्वागत-गान गाया। स्वर महीन होने से पीछे के कुत्तों को स्पष्ट सुनायी न पड़ा। कुछ शोर हुआ। सभापति की एक हलकी गुर्राहट के पश्चात् शोर मचाने वाले कुत्ते पुनः चुप हो गये। स्वागत-गान अत्यधिक पसन्द किया गया। इसका एक ही सबूत है कि अधिकांश कुत्ते चुप थे। कुछ लोग पेट के बल बैठे थे, कुछ लोग दो अगले पाँवों के बल। महिलाएँ अलग बैठी थीं। जाड़े का मौसिम होने के कारण कुछ कमजोर कुत्ते उनकी ओर एकटक देख रहे थे। छोटी पिल्लियाँ तीन-तीन चार-चार की संख्या में सतर्क होकर बैठी थीं, उन पर आक्रमण का डर था। एक कमजोर पिल्ली किसी पुरुष पिल्ले का विश्वास कभी नहीं करती।

साधारण काररवाई, जैसे गजरा आदि पहनाने के बाद सभापति का भाषण अन्त में होना तै पाया। मंत्री ने जो खास दिल्ली के निवासी थे, वार्षिक रिपोर्ट पढ़ी—

प्यारे भाइयो, देवियो,

यह वर्ष आपत्तियों के लिहाज से साधारण था। दुर्घटनाओं

के कारण दिल्ली आदि पश्चिमी नगरों मे खाद्य की कमी नहीं थी। इस सम्बन्ध मे हमे भारत के मासाहारियों के प्रति धन्यवाद का एक प्रस्ताव अवश्य पास करना चाहिये। बंगाल मे दंगों की कमी और राशन की कड़ाई के कारण खाद्य का कष्ट रहा। काशी मे दो कुत्ते, बनारस जिले मे चार कुत्ते भूख के कारण मर भी गये। बिहार मे भी अन्न का कष्ट था। सभी सजातीय पटने मे आ गये थे, इसलिए लोगों को अधिक कष्ट नहीं हुआ बम्बई मे हमारे कुछ भाइयों को गोली मार दी गयी है, इसका हमे विरोध करना है। साथ ही यह भी न भूलना चाहिए कि बडे शहरो मे हमारी एक अच्छी तादात लोगो की गोद मे पल रही है। देश मे अंग्रेजों की कमी के कारण विलायती कुत्तों की सख्या मे बहुत कमी हो गयी है। इसलिए अब आशा हो चली है कि हमारा सम्मान देश में शीघ्र बढ जायगा। हमारे अधिकाश भाई देहात मे किसानों के दरवाजे पर ही रहते हैं, उनकी खेत, खलिहान और दरवाजे पर दुश्मनों से रचा करते हैं, हम नगर के रहने वालों को उनका खयाल रखना होगा। यह ठीक नहीं है कि दूसरे की बस्ती में घुमकर बलिष्ट लोग कमजोरों को सतायें। पूँजीपति कुत्तों को सताना ठीक है, मगर देहात के कुत्तों को जो बिरादर सताये, सम्मेलन उसके विरुद्ध अनुशासन की कारवाई करे। नगरपालिकाएँ बहुत बेरहमी से हमारी पिल्लियों का बलिदान करती हैं। किन्तु यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिये, हमारा यह बलिदान निष्फल न जायगा। हमें अपनी राष्ट्रीय सरकार से अपने लिए अस्पताल बनवाने की माँग करनी चाहिए। शीघ्र ही स्वास्थ्य-मन्त्री से मिलने हमारा प्रतिनिधि-मण्डल पिछले प्रस्ताव के अनुसार दिल्ली जायगा। इस सम्बन्ध में पिलवानन्द (पटना), शिव्रू (कलकत्ता), मोती (लखनऊ), लिपॅजी (पञ्जाब) का

नाम प्रतिनिधि-मण्डल में हैं। [सम्मेलन मे उपस्थित उक्त नामों के कुत्ते गर्व से एक दूसरी की ओर मुस्कराने और देखने लगे।]

इस वर्ष देहातों में बिरादरान को तेरही की पूड़ियाँ खाने को कम मिलीं। गेहूँ की कमी के कारण लोगों को जूठन छोड़ने ही नहीं दिया जाता। तीन प्रतिशत आबादी 'ढौंसा' नामक बीमारी से घट गयी। तीन लाख बच्चे मकानों की कमी के कारण मर गये। बनारस जिले के महाइच परगने के एक कुत्ते को सूँघकर चोर पकड़ने की बहादुरी में स्वर्ण-पदक दिया गया। तीस मालिकों ने अपने साथी कुत्तों के लिए बिना समझे बूझे बहादुरी के जुर्म में सिक्कड़ों से बाँधना शुरू कर दिया। सम्मेलन को ५०० रुपये की फालतू आमदनी सुन्दर पिल्लों को अन्य जगहों में बेचने से हुई। ७६६७ कुत्ते इस वर्ष अभी अस्वस्थ हैं।

तीन पिल्लियों को बच्चा पैदा करने मे रिकार्ड तोड़ने के कारण बे० बी० की उपाधि दी गयी है। (पिल्लियों की ओर से भौं-भौं तड़तड़ाहट।) अब मैं अपनी छोटी-सी रिपोर्ट के पश्चात् सहयोगियों को धन्यवाद देता हूँ। उन्हीं के प्रयत्न से यह वर्ष उत्तम बीता है।

और मन्त्री महोदय सभापति की बगल में बैठ गये। अब संगठन पर पुनर्विचार प्रारम्भ हुआ। मन्त्री के चुनाव में खूब भौं-भौं हुई, क्योंकि वोट से ही सारा चुनाव हो रहा था। सभापति जस के तस चुन लिये गये।

उपस्थित सदस्यों ने, जिसमें भाग लेने वाले बनारस के ही अधिक सदस्य थे स्वास्थ्य प्रदर्शन भी किया।

भूँकने का प्रदर्शन अद्वितीय था। पुल से सभापति सुन रहे

थे। तेज भूँकनेवाले एक झबरे को ईनाम मिला। दौड़ने में सबसे तेज एक पिल्ली को दूध पिलाया गया। सूँघने में दक्षिण से आया हुआ एक काला कुत्ता तेज निकला। एक ऐसी पिल्ली भी प्रदर्शित की गयी, जिसकी पूँछ सीधी थी, लकड़ी की तरह।

सभापति के भाषण में कोई ज्यादा दम न था। गोलमोल बातें कहने के बाद उन्होंने नगरपालिकाओं के सदस्यों को गाली दी। धन्यवाद-प्रकाश के बाद सम्मेलन समाप्त हुआ।

अगला सम्मेलन प्रयाग में होना तै पाया।

अभिभाषण

हिन्दी साहित्य सम्मेलन का ८३ वाँ अधिवेशन : सभापति पद से अभिभाषण : स्थान-काशी सन् १९९६ ई०

हिन्दी-जगत के निवासियो,

जिस हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के सभापति-पद को घोर तपस्या के बाद भी पण्डित रामचन्द्र शुक्ल नहीं पा सके, ढेरों साहित्य-निर्माण करके भी जिसके लिए पराड़ जी झँखते ही रह गये, जिस हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के सभापति-पद के लिए आज राष्ट्र-कवि (द्वितीय) मोहनलाल द्विवेदी, अभिनन्दन ग्रन्थ के निर्माण के बाद भी अपने नाम लिये जाने की कोई उम्मीद नहीं देखते, ऐसे गुरुतर पद को आप लोगों ने मुझ जैसे एक साधारण हिन्दी पढ़ने वाले भारतीय को सौंपकर जो भूल की है, इसका कोई प्रायश्चित नहीं है। यदि कोई प्रायश्चित भी है तो वह यह कि अब आप मेरे सम्मान की रक्षा के लिए सतत प्रयत्न करें। क्योंकि आप अपने हैं और अपने दुख-सुख की बात अपनों से कही भी जाती है।

जिस पद पर विश्व-वन्द्य महात्मा गान्धी विराज चुके हों, उस पद पर काशी-वन्द्य कौतुक बनारसी की क्या जरूरत थी, सोचकर भी मैं नहीं सोच पाता। मैं न महात्मा हूँ और न दुरात्मा। साधारण हिन्दी का सेवक हूँ। अतः यह सम्मान मैं साधारण से साधारण हिन्दी-सेवक के सम्मान की दृष्टि से भविष्य के लिए पथ प्रदर्शक समझता हूँ।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का यह ८३ वाँ अधिवेशन मस्त नगरी काशी मे हो रहा है। काशी को भगवान शंकरजी की कुटी समझता हूँ और मैंने इसके विमल यश की पताका त्रैलोक्य से भी बाहर फहरती देखी है। यह देखा तो नहीं, किन्तु सुना है कि भगवान शंकर के त्रिशूल पर ही विराजती है अतः इसका आटम बम भी कुछ नहीं बिगाड सकता।

काशी के बाँके साहित्यिकों का इतिहास मे जो स्थान है, वह अन्य किसी नगरी को प्राप्त नहीं। यहाँ ऐसे ऐसे हास्यरस के लेखक भी पैदा हुए हैं जो मुँह पर गाली देते हैं, पीठ पीछे प्रशंसा करते हैं और कविता मे बातचीत करते हैं। यहाँ 'हल्दीघाटी' तो नहीं, किन्तु इस नगरी के पास ही 'हल्दीघाटी के रचयिता रहते हैं। इस वर्ष उनका छठाँ महाकाव्य प्रकाशित हुआ है; उसकी 'पैरोडी' मैं लिख रहा हूँ।

खगोल में सूर्य्य-मण्डल, सूर्य मण्डल मे पृथ्वी, पृथ्वी मे काशी, काशी मे हिन्दी साहित्य-सम्मेलन और हिन्दी साहित्य-सम्मेलन मे 'मै'। यह सोलह आना अभूतपूर्व बात है। पण्डित रामचन्द्र शुल्क विनिर्मित हिन्दी साहित्य के इतिहास मे अनोखा अध्याय जुडनेवाला है।

यह सन् ९६ है। आसमान, धरती और मानव का चेहरा—सर्वत्र पहले से अधिक परिवर्तित हो गया है। एक दिन वह भी था, महायुद्ध समाप्त हुआ था, कागज नहीं मिल रहा था, हिन्दी का एक अखबार निकालना था, बिना निकले मैं उसका सम्पादक हो नहीं सकता था और जब सम्पादक ही नहीं रहूँगा, तब पेट कैसे भरेगा, यह खद्दर का पायजामा, गान्धी टोपी और झोलदार कुरता कहाँ से बनेगा—समस्या थी। किन्तु यह सन ५६ नहीं,

९६ है। अब मैं, अर्थात् सन् ४३ में पैदा हुआ हिन्दी का सात्यिकार, इस योग्य हूँ कि मुझ से आजकल के पुस्तक प्रकाशक चिरौरी करते फिर रहे हैं। क्यों ? जानते हैं—इसी अवसर के लिए। भारतेन्दु बाबू ने लिखा है—सबै दिन होत न एक समान। अब जमाना बिलकुल बदल गया है। हमें किसी से भी भिड़ जाने के लिए तैयार रहना चाहिये। हिन्दी का साहित्य किसी से पिछड़ा नहीं रहा, अब वह सबकी आँख पर चढ़ बैठा है। उसने अपने समवयस्क साहित्यों की 'प्रेम-प्रेम' में नाक पकड़ ली है। सब उसे अपना मित्र समझने लगे हैं। सब उसे 'गुरु' कह कर पुकारते हैं। कहते हैं काऽगुरु'।

एक दिन ऐसा भी था, जब हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन से बापू ने भी नाम वापिस ले लिया था, अब वह दिन नहीं रहा। अब तो हिन्दी 'राष्ट्रभाषा' की ऊँची कुर्सीपर उसी कार्यालय में विराजती है, जिसमें किसी समय बुखारी नाम के कोई मुसलमान साहित्यिक पीठ सहलाया करते थे। आज का दिन धन्य है। एक दिन था, मैंने इसी काशी नगरी में 'ज्योत्स्ना' नाम की एक मासिक पत्रिका निकाली थी; किन्तु कागज और प्रेस की कठिनाइयों के कारण मुझे उसे कलेजे पर हाथ रखकर बन्द कर देना पड़ा था; किन्तु आज वह पत्रिका हिन्दी साहित्य में अपना अलग स्थान रखती है और मैं घर पर बैठे-बैठे तीन-तीन हिन्दी दैनिकों को अग्रलेख लिख रहा हूँ। मेरी अभिवृद्धि हिन्दी की अभिवृद्धि है और यही कारण है कि मैं कभी-कभी अचानक अपनी पीठ अपने ही हाथों ठोंक लेता हूँ।

अपनी प्रशस्ति के बाद भाषण में क्या विशेष बात कही जाती है; अपने पुराने सभापतियों का भाषण पढ़ने के बाद जो कुछ मैं समझ चुका हूँ वह यह है कि अब मैं आप लोगों की प्रशंसा मे

भी चन्द शब्द लिखूँ। आप के हिन्दी-प्रेम की बदौलत ही अब हिन्दी मे छपनेवाले पत्रो का कोटा खतम हो जाता ह पर, ग्राहकों की माँग पूरी नहीं होती। सन् ५८ तक जब वर्ष मे एक बार ही सम्मेलन होता था, आप वर्ष मे ५२ बार कवि-सम्मेलन करने लगे हैं। कुछ दिन पूर्व जब आप केवल हास्यरस के कवियों को ही पुरस्कार और रेल का किराया दिया करते थे, अब प्रत्येक कवि को ५१) देने लगे हैं। एक जमाना था जब मेरे घर पर हिन्दी का एक दैनिक सायंकाल आ जाता था और मुहल्ले भर के लोग दस बजे रात तक उसे चिचोरते रहते थे। किन्तु अब रास्ते चलते उठते-बैठते, सोते-जागते, हर समय आप अखबार पढ़ने लगे हैं। आप में ऐसी भावना समा गयी है कि किसी दूसरे के पैसेसे खरीद हुआ अखबार पढ़ना बेशरमी है। पुस्तकालयोंसे पुस्तकें झटककर पढने के पक्ष में अब आप नहीं रहे, खरीदकर पढते हैं। 'साइनबोर्ड' हिन्दी मे लिखने लगे हैं। एक मेरे डाकिया मित्र ने उस दिन बतलाया कि अब इङ्गलिश में चिट्ठियाँ नहीं लिखी जाती हैं। कुछ दिन में ऐसी आशा है, आप पता भी हिन्दी मे ही लिखेंगे। आप का हिन्दी प्रेम प्रशसनीय है। उसकी सराहना मैं किन शब्दों में करूँ ?

अब मैं हिन्दी की प्रशसा करूँगा यदि हिन्दी का अस्तित्व न रहता तो हम यहाँ आये ही न होते। हिन्दी वह समर्थ भाषा हे जो अपने दस-बीस वर्ष के उचित आन्दोलन के फलस्वरूप राष्ट्रभाषा के पद पर बैठ गयी। हिन्दी वह समर्थ और शक्तिवान भाषा हे, जिसमे मैंने भी कुछ लिखने पढने का शौक किया। क्योंकि मैं तो बिलकुल आवारा जन हू, इन सब साहित्य के घास-लेटी मामलों में क्यों पड़ने जाऊँ ? पर वाहरे हिन्दी ! तुमने खींच ही लिया।

हिन्दी ही वह भाषा है जिसमें गुसाईं तुलसीदास ने कौतुक बनारसी को प्रतिदिन प्रातःकाल पाठ करने के लिये मोटा-सा रामायण लिखा। सूरदासजी ने भक्त-समाज को सन्ध्या-समय गोता लगाने के लिये सूरसागर लिखा, जिसमें अब भी न जाने कितनी साहित्यिक खोपड़ियों के जहाज डूबते-उतराते रहते हैं।

हिन्दी ही वह भाषा है जिसमे पण्डित नन्ददुलारे बाजपेयी ने समालोचना; बेढबजी ने व्यंग्य, दुलारेलाल जी ने दोहावली; निराला जी ने 'कुकुरमुत्ता' पण्डित शान्तिप्रिय द्विवेदी ने काव्य लिखा। हिन्दी ही वह भाषा है जिसमें राजेन्द्र बाबू ने अपनी जीवनी लिखनी प्रारम्भ की, पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी ने पत्र-कारी शुरू की, जैनेन्द्र जी ने 'दर्शन' लिखा।

पण्डित खूबसूरत दास और डाक्टर स्टारचन्द्र जैसे योद्धा भी जिस भाषा की कानी उँगली टेढ़ी न कर सके, श्री मन्नारायण अग्रवाल और काका कालेकर जिसकी वृद्धि चश्मे से देखते ही रह गये, उसी हिन्दी भाषा की प्रशंसा बनावटी चीज होगी। सोलहों आना कृत्रिम। बिलकुल कृत्रिम।

इस वर्ष अर्थात सन् ९६ में हिन्दी-साहित्य इतना भर-सा गया है कि उसमें अब अधिक चीजो की जरूरत ठीक अनपच की तरह हो जायगी। आजाद होते ही हमने अपने को सँभाल लिया, इसमें शक नहीं। मैंने एक पुरस्कार प्रतियोगिता की थी काशी के एक प्रसिद्ध कवि को उनकी निम्नांकित रचना पर जो ५१० रुपये का पुरस्कार दिया गया, सच पूछिये तो उनकी प्रतिभाको देखते हुए कुछ नहीं है। रचना यों है—

'मुझ कविवर को प्यार न दोगे ?

देख निशा की सुन्दर वेला, फेंक रहा है कोई ढेला।
फूटे अपना इसके पहले, उसका फोड़ कपार न दोगे ?

चल न सकेगा आज बहाना, अब ससुराल मुझे है जाना।
बहुत दिनों से माँग रहा हूँ, अपना पैण्ट उधार न दोगे?

मुझपर तुकबन्दियाँ बनाता, कपि-कपि कहकर मुझे चिढ़ाता।
दुष्ट तुम्हारा है वह लड़का, उसकी चाल सुधार न दोगे?
कुछ इज्जत पाने आया हूँ, कविता छपवाने आया हूँ।
पुरस्कार क्या छप जाने पर, एक अङ्क अखबार न दोगे?
मुझ कविवर को प्यार न दोगे?'

मेरे सुझाव और कवि की प्रार्थना को ख्याल में रखकर पुरस्कार इस रचना के रचियता को ही दे दिया गया। आपसे समर्थन की आशा रखता हूँ।

हिन्दी साहित्य में इधर जो कुछ गद्य-काव्य प्रस्तुत हुआ है, वह अनिर्वचनीय है। हिन्दी में ऐसे गद्य की भी नितान्त आवश्यकता है। एक हलके फूँक से ही अर्थ का अनर्थ कर देनेवाले गद्य की हमें अब तनिक भी आवश्यकता नहीं रह गयी है। उदाहरण के लिये—

नवोल्लसित जीवन के उत्फुल्ल तथा मर्यादित संस्कृतियों के संघर्षण की संकृति के उद्योग की बवण्डर की सड़ाँद में जीवन की प्रगतिशील शक्तियाँ और अनुगामी तत्त्व नष्ट न होने पावें, तब तारीफ है। हिन्दुस्तान की विस्फोटक शक्तियों को घुटने के बीच भी जीवित रखना है। फिर भी मनुष्य को कुछ वैसा-वैसा सा लग रहा है।'

हिन्दी विश्वविद्यालय का स्वप्न जो हम आँज से १० वर्ष पूर्व देखा करते थे, पूरा हो चुका है, लेकिन उसमें विश्वविद्यालयों जैसे अध्यापक अब भी नहीं मिल पाये हैं, यह कठिनाई है। फिर भी आपके प्रयत्न से दूर की जा सकती है। अब हमें एक ऐसी

संस्था का निर्माण करना शेष रह गया है, जहाँ उग्र जी जैसे महान् साहित्यिकों को, जो किसी समय गाली देने में पूर्ण पटु थे और जिनकी गालियाँ हिन्दी-साहित्य में अपना अलग स्थान रखती हैं, रखा जाय ; उनसे कुछ और लिखाया जाय। कविवर सुमित्रानन्दन पन्त का 'लोकायन' इस दिशा में श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी के प्रयत्न से काफी काम कर गुजरा।

हिन्दी के साप्ताहिकों में छींटा लिखने का कुछ लोग कभी पेशा करते थे अगड़धत्त शर्मा, अपनेराम बनारसी, तीरंदाज, बेनी-माधव, नारद, मौजी आदि-आदि। इन लोगों का इतिहास में विस्तृत परिचय आ जाय, मैं इस प्रयत्न में भी हूँ।

हास्यरस के लेखकों का परिचय भी यदि प्रस्तुत कर दिया जाय तो इतिहास की रक्षा हो जाय ; क्योंकि ये लोग छिप-छिप कर लिखते हैं, फिर इन्हें क्यों न जनता के सम्मुख घसीट लाया जाय ?

काशी जैसी त्रैलोक्य से बाहर बसी हुइ नगरी मे एक ऐसा स्मारक बनवाने के भी पक्ष में हूँ जिस पर हिन्दी विरोधियों के नाम अंकित किये जायँ, जिन्होंने हिन्दी का विरोध करके संसार में अपना नाम अमर कर लिया है। इनके नाम को मिटाना एक बहुत बड़े सत्य से भागना होगा।

कुछ कविताएँ, जो हिन्दी में बिना प्रयास चली आ रही हैं, सम्मेलन उद्धृत कर छपा डाले तो एक सुन्दर कार्य पूर्ण हो। 'हंस' में छपी वह रचना मुझे आज भी नहीं भूलती।

'हाथी घोड़ा पालकी, जै कन्हैया लालकी' आदि-आदि।

कहते हैं, हिन्दी में प्रगतिशील साहित्य इन्हीं पंक्तियों में भरा पड़ा है। क्या ही सुन्दर होता, हम प्रगतिशील सम्पादकों को अधिक न 'दुहराते'। प्रगतिशील कलाकारों ने भी कई ऐसी

सुन्दर पुस्तकें दी हैं जिनकी प्रशसा मे केवम चार शब्द ही काफी न होंगे—लम्बा वक्तव्य देना होगा। प्रगतिशील पुस्तकों की छपाई और कवर आदि बेहद सुन्दर होता है।

अन्त मे हिन्दी पत्रो के सम्बन्ध मे एक बात कह दूँ तो ज्यादा बुरा न होगा, वह यह कि हिन्दी के लेखकों को पुरस्कार देने के सम्बन्ध में कोताही बिलकुल न करें। कालम गिनकर रुपया पारिश्रमिक देना अन्याय है। ४ रुपया १४ आना किसी रचना का पारश्रमिक नहीं हो सकता, बल्कि ५) ही होगा। आना पाई के हिसाब से साहित्य नहीं जीता। साहित्यकार नहीं बनते।

हिन्दी का सफल विकास हो रहा है। वह शीघ्र ही इङ्गलैण्ड की 'प्रिय' भापा बनेगी; इसमें सन्देह का स्थान ही नहीं है। अब वह दिन निकट है जब हिन्दी मे देश के नेता अपनी सभी किताबें लिखने लगेंगे। आतुरता की आवश्यकता नहीं रह गयी है।

इसी प्रकार योग्य व्यक्तियों को ढूँढ़कर जिस किसी को भी सम्मेलन की इस पवित्र गद्दी पर बैठाने के लिए, यदि मैं आपको धन्यवाद दूं तो भी अन्याय करूँगा, और यदि धन्यवाद बिलकुल ही न दूँ तो भी। अत: इसी घपले में केवल खुश होकर अपना भाषण समाप्त करना अधिक मागलिक समझता हूँ। जयहिन्द।

सभ्यता की चढ़ाई

बीसवीं सदी की प्रथम वर्ष की पहली जनवरी थी। सिर्फ १५ मिनट में ही सन् १९०१ शुरू होने वाला था। आधी रात होने में कुल ६० सेकण्ड और आ बचे थे कि एकाएक सभ्यता ने, आज की सभ्यता ने, 'वार डिक्लेयर' कर दिया। गोलों पर गोले दगने लगे। वातावरण ही बदल गया। सिर्फ इसलिए कि बीसवीं सदी शुरू हो गयी थी। आज की सभ्यता ने मानव-समाज पर धावा बोल दिया था।

सर्व प्रथम सभ्यता का आक्रमण फ्रांस की कोमल नाक पर हुआ। समस्त पेरिस एक दूसरे ही रोशे-गोशे में नजर आने लगा। हवा भी बदल गयी। पहले वह 'हहर-हहर' कर चलती थी। अब 'ठुमुक-ठुमुक' कर चलने लगी। पेरिसवासी सभ्यता के प्रचार में वैसे तो बहुत पहले से ही आ गये थे; लेकिन आक्रमण के दिन तो वे और भी बेहोश हो गये। उन्हें नाच रंग फैशन की गोलियों और बरछियों ने इस कदर पस्त कर दिया था कि उन पर वर्तमान सभ्यता का 'साम्राज्यवाद' बहुत शीघ्र छा गया। सब 'हाय 'हाय' करने लगे। पेरिस के 'आत्मसमर्पण' के बाद सभ्यता की चढ़ाई समूचे फ्रांस पर हुई। वह दो ही आटमबम में मुँह के बल आ गिरा। अब समूचे फ्रांस पर सभ्यता उर्फ फैशन की कौंसिल का शासन चलने लगा।

किन्तु सभ्यता की चढ़ाई यहीं तक समाप्त न हुई, वह और आगे बढ़ी। उसका तीसरा आक्रमण लन्दन पर हुआ। फिर

क्या था, अंग्रेजो की फौज उसके सम्मुख कुछ मिनट भी न टिक सकी। सारा मामला वैसे ही शान्त हो गया जैसे 'लडाई' खतम होने पर 'स्वराज्य' खतम हो जाता है। और लोगों ने देखा कि मामला और ही रङ्ग पकड़ता जा रहा है। देखते देखते सभ्यता की चडाई का यों असर हुआ कि ब्रिटिश साम्राज्य ही समूचा उसके अधिकार मे आ रहा। हाँ, इसके लिए उसे कठिनाई यह उठानी पडी कि काफी वर्षों साधना चलती रही। सभ्यता का प्राइवेट सेक्रेटरी 'फैशन' उसको हर प्रकार की राय देता रहा। धीरे-धीरे कुछ वर्षों में भारत पर भी उसने विजय प्राप्त कर ली।

अमेरिका वाले तो सभ्यता के आक्रमण से तनिक भी विचलित न हुए। उन्होंने सिर-माथों पराजय चढ़ा ली। जापानी भी क्या एक वटा चौंसठ होते हैं। उन्होंने आज की सभ्यता को जयचन्द की तरह निमन्त्रण देकर बुलवाया और हलाली के ठीहे पर विना चूँ-चरा किये अपनी गरदन रख दी। कुछ ही दिनों मे जापान पर आज की सभ्यता का पुरा आधिपत्य होगया।

ब्रिटेन वाले वड़े चालाक होते हैं। इन लोगों ने देखा कि सभ्यता के सामने आत्मसमर्पण की शर्तों मे एक यह शर्त बढा देनी चाहिये कि जहाँ वर्तमान सभ्यता अपना आक्रमण कर साम्राज्य स्थापित करे। वहाँ अंग्रेजी का प्रभुत्व अवश्य हो, क्योंकि थोडे ही दिनों में 'श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन' नाम के एक आदमी 'इण्डिया' में जन्म लेंगे जो सर्वत्र हिन्दी को सभ्यता की पीठ पर लादकर चलने के लिए वाध्य करेंगे। सभ्यता देवी को बात जॅच गयी और यह सुलह ठहरी कि जहाँ-जहाँ मिसेज सभ्यता हमला करें वहाँ-वहाँ उनकी शासन-परिषद् से लेकर छोटी-मोटी सभा-सोसाइटी तक का कार्य अंग्रेजी मे ही हो।

कहने का मतलब यह कि वर्तमान सभ्यता का एक छत्र राज्य सर्वत्र हो गया। विना किसी प्रकार सिर हिलाये लोगों ने उनकी सभी शर्तें मानकर आत्मसमर्पण कर दिया। सभ्यता के सेक्रेटरी फैशन ने 'प्यानो' नामक एक टङ्क तैयार किया। यह शस्त्र जहाँ-जहाँ ले जाया गया, वहाँ-वहाँ विना किसी प्रकार का प्रतिरोध किये विना लोग सीना फैला देते और थोड़ी देर में एक 'हाय' सुनायी पड़ती। सभ्यता को हवाई जहाजों की बहुत कम जरूरत पड़ी। रोगियों का आपरेशन करने के लिए उन्होंने 'सेफ्टी-रेजर' नामक एक चीज भी तैयार करायी। लेकिन यह चीज जिस उपयोग के लिए बनी; वह दूर रह गया, इससे लोग दूसरा ही काम लेने लगे। लोगों की शारीरिक दीवार पर जब घास पात उग आती तो इसी यन्त्र से काट लेते। इस प्रकार सभ्यता के देखते ही एक वस्तु दो काम इस प्रकार हुआ कि कवि-सम्मेलनों में जानेवाले कवि भी समय की बचत के लिए राह मे, रेल में, सभा-मण्डप में इसका उपयोग करने लगे।

मिस्टर फैशन ने एक ही नया काम न किया। बल्कि दिन भर अनेक चीजों का आविष्कार करते रहे। जमीन साफ करने वाले झाड़ू का उन्होंने इतना परिष्कृत रूप तैयार किया कि लोग उसकी सुन्दरता से मोहित होकर प्रति दिन एक बार अपने चेहरे को भी उसी झाड़ू से बुहारने की आवश्यकता महसूस करने लगे। इसे 'ब्रुश' कहते हैं।

धरती का अधिकाधिक उपयोग करना चाहिये, फैशन का विचार तो था ही, सभ्यता का भी। इस विषय वर अत्यधिक जोर था। ऊसर खेत बनने लगे। इसलिए कपड़ा साफ करने लायक 'रेह' मिट्टी तक का अभाव हुआ। फैशन ने अपने विशेष वैज्ञानिकों द्वारा एक ऐसा मलहम तैयार कराया जो काफी कड़ा बनता

सभ्यता ने काफी परिवर्तन किया, किन्तु भोजन पीढ़ा पर बैठ कर या चटाई पर रखकर करने का रिवाज नहीं गया। बस फिर क्या था, मेज-कुर्सी का आविष्कार हुआ। हाथ से खाने में डर था कि कहीं भोजन में बीमारी के कीड़े न चले जायँ। इसलिए छूरी और काँटे बनवाये गये। सभ्यता की देख-रेख में ऐसा प्रयोग हो रहा है जिससे एक मशीन तैयार होगी जिसके सामने मुँह करके बैठ जाया जायगा और वह खुद खाना खिला देगी। अभी इस यन्त्र में देर है। बीमारी के कीड़े बहुत छोटे-छोटे होते हैं। पर-माणुओं की तरह इधर से उधर आते-जाते हैं। किसी देश में बीमारी फैलाने के लिए यदि इनका कोई 'कीटाणु-बम' तैयार किया जाय तो देश जीतने में अधिक सफलता मिले।

आज की सभ्यता के राज में रहनेवालों का विचार है कि जिस तरह स्वर्ग में इन्द्राणी और इन्द्र मुक्त जीवन व्यतीत करते हैं वैसे मनुष्य भी कर सकता है। इसके लिए सभ्यता के विशेष अधिकारी मि० फैशन के सम्मुख यह सुझाव रखा गया कि वे एक सवारी का इन्तजाम यथाशीघ्र करें। मोटर का इसी के बाद आविष्कार हुआ, रिक्शा भी बनवाया गया। रिक्सा विशेष सुविधा-जनक होता है।

जीभ ईश्वर ने केवल लेक्चर देनेवालों को ही नहीं दी है। वह सबके पास है। सभ्यता ने लोगों की जीभ पर धीरे धीरे अधिकार किया। इस अधिकार के बाद ऐसा हुआ कि जो भारतीय किसी दिन 'महाशय' और 'मौलवी साहब' पुकारा करता था, अब वह केवल 'जनाब' कहकर ही शांत हो जाने लगा। गालियों के रूप में विशेष सुधार हुआ। हिन्दी का सुधार जिस तरह 'हिन्दुस्तानी कमेटी' कर रही है उसी तरह गालियों का सुधार मि० फैशन के कुछ विद्वानों ने हाथ में लिया। परिणाम यह हुआ

कि आफिस के बाबू को बुलाने के लिए 'साहब' एक विशेष प्रकार के शब्द का प्रयोग करना पड़ा।

नमस्ते करने का ढङ्ग इसलिए बदल दिया गया कि इससे आशङ्का बनी रहती थी कि कहीं मारने की धमकी तो नहीं दी जा रही है; अतः सभ्यता के शासन में नमस्ते करने का तरीका हाथ मिलाकर झकझोरने वाला हो गया, जिसका यह मतलब है कि जिस तरह हम हाथ मिला रहे हैं, आवश्यकता पड़ने पर दिल भी मिला सकते हैं। झकझोरने का तात्पर्य यह रहा कि हम दोनों एक दूसरे को अभिवादन करने वाले, एक स्थान पर कुतुब की लाट की तरह दृढ़ हैं कि नहीं। फिर भी अभी ऐसे लोगों की कमी नहीं है जिनसे हाथ मिलाने के लिए हाथ बढ़ाइये तो हाथ जोड़कर दाँत निपोर देते हैं। किन्तु सभ्यता ने यदि पुलिस का उपयोग किया तो शीघ्र ही ऐसी धाँधलियाँ खतम हो जायेंगी।

नये कानून के अनुसार एक और भी सुन्दर परिवर्तन किया गया है। यदि किसी को कहीं पिकनिक आदि पर जाना है तो वह किसी से भी दो-चार नौकर उधार या भाड़े पर ले सकता है, ताकि कम से कम देखने वालों को या मिलने वाले रिश्तेदारों को यह न मालूम होने पाये कि इनके पास मामूली नौकर भी नहीं है। घर पर जल भले खुद निकालते हों, लेकिन ऐसे स्थल पर बिना नौकर कोई काम कदापि न करेंगे।

आज की सभ्यता के राज में बड़ी-बड़ी बातें बदल गयीं। बदलने वाली हैं। बदल रही हैं। कवि, लेखक, सम्पादक से लेकर पाठक तक सभी बदल रहे हैं—यहाँ तक कि इस लेख के लिखने के फेर में मेरा जूता भी बदल जाने का डर है, क्योंकि अब अधिकांश लोग बदलकर चोर हो गये हैं।

कला का कचूमर

कलापर कलम-कुल्हाडा चलाने के पूर्व हम कुछ अपने ही जैसे कलाकारों के चन्द वाक्य 'उद्धृत कर देना बुरा नहीं समझते। बुरा समझते थे, लेकिन आज से कुछ वर्ष पहले। अब नहीं। अब तो कोई यह कहने का दुस्साहस ही नहीं कर सकता कि हम मौलिक वस्तुएँ हिन्दी-जगत को नहीं दे रहे हैं, दूसरों का सहारा ले रहे हैं। हाँ, तो सेक्सपियर ने शायद लिखा है—

कला अँगीठी है, साहित्य दमकला है, जीवन जाड़ा है, समालोचक आँख सेंकनेवाला जीव है। इसी व्यापार मे सारी कला की उपादेयता है, सार्थकता है, और है महत्ता। इसीलिए प्रत्येक कलाकार को जाडा रूपी जीवन से घबड़ाना न चाहिये, साहित्य रूपी गरम दमकले का इस्तेमाल करना चाहिये, क्योंकि कलारूपी अँगीठी उसी में निहित है।

रस्किन ने शायद कहा—

कला सौन्दर्य रूपी तेल से भरी हुई वह कडाही है जिसमे साहित्यिक रूपी पकौडी छना करती है और जिसे काल रूपी दूकानदार मृत्यु रूपी पौने से छानता रहता है।

पण्डित नन्ददुलारे वाजपेयी ने शायद कहा है—

कला वह सत्य है जिसमे कला कला के लिए है और जब कला कला के लिए है तब वह सुन्दर है। कला या सत्य या सुदर या वस्तु या व्यापार के विनिमय या चित्रण की अभिव्यक्ति की

गुञ्जाइश इस कला की महत्ता है और यही कारण है कि कला कला के लिए है और जब कला कला के लिए नहीं है तब वह कला नहीं।

आशा है, अब आप कला की एक हलकी रूपरेखा समझ गये होंगे और यदि न भी समझे होंगे तो 'ह्वाट इज आर्ट' 'इण्ट्रोडक्शन ·····क्रिटिसिज्म आफ लिटरेचर' और 'हिन्दी-साहित्य बीसवीं शताब्दी' मे कोई भी पढ लेने पर आप अच्छी तरह समझ जायँगे। सच पूछिये तो इन पुस्तकों पर एक आँख फेर लेने के पश्चात् ही अपने राम ने निश्चित किया कि आखिर कला है क्या ? और तब मैंने यह निर्णय दिया—

कला भगेलू ग्वाले की उस लड़की का नाम है जो कल 'कल' के पास खड़ी कलाई की कोमलता पर विचार कर रही थी और जिसमे सत्य और सुन्दर का सोलहो आने ठीक-ठीक समावेश था। क्योंकि वह जितनी फीट लम्बी है उतनी ही फीट और उतनी ही इञ्च मोटी भी है।

इस प्रकार जब हम देखते हैं कि कला की व्याख्या भी एक कला है तब हम आश्चर्य मे पड जाते हैं कि आखिर कला है क्या ? कला पर सम्यक विचार कर लेने पर कोई विद्वान यह कह सकता है कि 'कला एक शब्द है जो नागरी प्रचारिणी सभा काशी के शब्दकोष में अवश्य आया होगा। कोई कह सकता है कि 'कला' पाकिस्तान जैसा नाम है जिसकी तह तक अभी कोई नहीं पहुँचा है। किसी के मुँह से यह भी निकल सकता है कि 'कला' एक गूढ विषय है जिस पर स्कूल-कालेज के छात्र प्रतियोगिताओं में भाषण देते हैं। कुछ विद्वान ऐसे भी मिल जायँगे जो कहेंगे—कला एक ऐसी ताली है जिससे आदर्शवादी साहित्यिक या चित्र-

कार यथार्थवादी साहित्यिकों या चित्रकारों के दिमाग का ताला खोला करते हैं।

कला वस्तुत: एक रूप नहीं, इसके अनेक रूप हैं। उतने ही जितने एक रुपये मे पैसों की सख्या। चौसठ कलाओं के भीतर ही चौर्य-कला, लेखन-कला, भाषण-कला और चित्र-कला भी आ जाती है। वैसे तो कला के पेट में प्रत्येक वस्तुएँ आ जाती हैं, फिर भी कुछ का ही उल्लेख अधिक उपयुक्त होगा।

शादी करने की कला और शादी कर लेने के बाद उसके उपयोग की कला। दोनों में वेहद अन्तर है, मगर हैं दोनों ही कलायें अचम्भे से सराबोर। एक का ज्ञान 'वीणा के भूतपूर्व सम्पादक को बिलकुल नहीं है। और दूसरे का ज्ञान 'प्रगतिशील पत्र के वर्तमान सम्पादक को अच्छी तरह है। एक मे उत्सुकता है दूसरे में उपयोग। एक मे चिन्ता है दूसरे मे स्थिरता।

लेख लिखने की कला और लेख झटकने की कला मे बहुत थोडा अन्तर है। लेकिन हैं, दोनों ही होशियारी से भरी हुई। 'झटकटेड माल छिपा लेना, खपा लेना केवल वणिक-सम्प्रदाय ही जानता है; लेकिन इस कला को यदि लेखक जान जाय ? तो फिर क्या पूछना ? चाँदी है। जैसे लेख लिखने की कला अन्नपूर्णानन्द-जी से लेकर उग्रजी तक, सबको मालूम है, मगर झटकने की कला एक मैं ही जानता हूँ। राजनीति में झटकने की कला कुछ-कुछ सुप्रसिद्ध बनारसी कम्युनिस्ट ही जानते हैं। सम्पूर्णानन्दजी झटकते नहीं लिखते हैं।

रगड़ना भी एक सुन्दर कला है। हर किसी के कान और नाक के बीच एक उभरा-उभरा-सा स्थान है, किसी-किसी का तो गुलगप्पा की तरह भी होता है। उदाहरण के लिए पत्रकार संघ के

वर्तमान अध्यक्ष को देखा जा सकता है, अधिकतर लोगों का पिचका होता है, इसके लिए इसी संघ के एक भूतपूर्व अध्यक्ष को देखना होगा। होली के दिनों में इसपर गुलाब रगड़ा जाता है, बाकी दिनों में हाथ या साबुन। मगर कला की सार्थकता इसी में है कि वह लाल हो जाय। शरीर से शरीर भी रगड़ा जाता है। इससे एक प्रकार की आग पैदा होती है। जिसे प्रेम कहते हैं। इस प्रकार की रगड़ने की क्रिया में कला का उपयोग बहुत समझ-बूझकर किया जाता है। कुछ लोग परीक्षा-भवन में कलम से कागज रगड़ते हैं। कुछ लोगों में ऐसा भी पाया गया है कि देहली पर सिर रगड़ते हैं जिसे जो कला पसन्द आ जाय। अपनी-अपनी तबीयत है।

भाषण-कला भी अनोखी वस्तु है। किस स्थलपर काँग्रेस को कितनी मात्रा में गाली देने से रेडिकल वाले महत्त्व पायेंगे, किस भाषण में कितना झूठ बोला जाय जिससे रूस के भानजे का कल्याण हो, किस भाषण में कितना हकलाया जाय कि जनता जान जाय कि जमींदारों के खास दामाद राय प्रबन्धचन्द्र विद्वान हैं और ओट की भीख चाहते हैं—आदि ऐसी बातें हैं जिनका सही-सही ज्ञान हुए बिना कोई भी भाषण कला में पारंगत नहीं कहा जा सकता—

'हें हें' भी एक कला ही है। यों समझने वाले एक बला भी समझते हैं। यदि 'ठकुरसुहाती' जिला मस्ट्रिेट का काम करती है तो 'हें हें' आनरेरी मजिस्ट्रेट का। इसी के भरोसे पण्डित पटवारी पाण्डेय सम्पादक प्रवर श्री प्राण प्रवीण पहाड़ी से महीना में चार रचनाएँ कई नामों से प्रकाशित कर १८ कालम का २०) के हिसाब से 'अवाउचर' बनवा लेते हैं। और लोग २०—२० कालम

लिख कर भी समझ नहीं पाते कि उन्हे ४ रुपये १४ आने ही क्या मिले हैं।

'हे हे' की बदोलत; देख लीजियेगा, कुछ निकलुवा फिर लीडर हो जायँगे और कौतुक बनारसी लेखक से सम्पादक। जरा नीचे देखिये तो आपको दिखायी देगा कि 'हे हें' की कला से ही सृष्टि चल रही है। सिनेमा वाले हिन्दी लेखकों से 'हें हें' कर रहे हैं। कविवर मोती बी० ए० और कविवर नेपाली काफी 'हे हे' के बाद बम्बई की 'हें हें' में पहुँच गये हैं।

'कला' भी क्या है—हें हे हें हे। कला के पहले 'च' लगा दीजिये, देखिये क्या बन जाता है। बाद मे 'कार' लगा दीजिये-अब देखिये क्या बन जाता है—कलाकार। क्या आप 'कार' लगाकर कलाकार बनेंगे ? मुझे तो ऐसी ही उम्मीद है।

सवि-कम्मेलन

टाउनहाल की इमारत प्राणियों से खचाखच भरी हुई है। नर-मादा, अंडे-बच्चे सभी नोन-तेल-लकड़ी की चिन्ता से अपना पिण्ड छुड़ाकर कवियों का सम्मान करने आ पहुँचे हैं। बिजली के लट्टू बिहारी की नायिका के मुख-मण्डल से भी अधिक प्रकाश दे रहे हैं। इमारत में टँगी म्युनिसिपल अधिकारियों की तसवीरों से पचीसों वर्ष पुरानी गर्द झाड़कर दूर कर दी गयी है। भीड़ अधिक हो जाने के कारण कुछ लोग जनता की टाँग में घुसकर भीतर आ गये हैं। इस राष्ट्रीय सवि-कम्मेलन के सयोजक अपने स्वयंसेवक से प्रार्थना कर रहे हैं कि वे प्रबन्ध के लिए अधिक परेशान न हों, अपितु हो-हल्ला न मचाते हुए कहीं बैठकर काररवाई में भाग लें। स्वयंसेवक फिर भी प्रबन्ध में डटे हैं, उनमें इस बात का झगड़ा हो गया था कि स्त्रियों को बैठाने के लिए बारी बारी प्रत्येक स्वयंसेवक भेजा जाय, यह ठीक नहीं कि यह श्रेय किसी एक व्यक्ति को ही दिया जाय।

संयोजक जी सब लोगों को शान्त रहने की अपील करते हैं। होली का अवसर होने के कारण सभी उपस्थित जन रोली और अबीर से लाल-से हो उठे हैं। किसी की कनपटी और नाक के बीच के स्थान पर कौन-कब गुलाल रगड़ देगा, कहा नहीं जा सकता। किसी को इसकी चिन्ता भी नहीं, जैसे सब तैयार बैठे हैं। इसी बीच संयोजक जी ने 'माइक्रोफोन' उठाया और बोले—

उपस्थित सज्जनों ! घबड़ायें नहीं, कवि लोग आ ही रहे हैं। चाय-वाय पी रहे थे। अँगनू तमोली जरा पान-वान लगाने मे भी जल्दबाजी न कर सका। गोपेश जी तनिक 'लन्दन' चले गये थे, [हँसी] इसी से देर हो गयी है। अन्यथा आ ही जाते हैं। (फिर तनिक रुककर और इधर-उधर ताकते हुए) इस बीच नगर के प्रसिद्ध नागरिक बाबू जलजनाथ अग्रवाल अपनी पत्रिका से कुछ होली विषयक कजलियाँ आपके सम्मुख रखेंगे, आप कजली-विशेषज्ञ हैं। कजली-संग्रह पर आपको देवपुरस्कार मिलते-मिलते रह गया। यों तो कजली सावन में ही उचित है, पर आप चाहे तो . (हाँ-हाँ अवश्य अवश्य की आवाज)।

बाबू जलजनाथ—मैं कविता वविता नहीं लिखता भाइयों ! प्रेमी हूँ मैं केवल, कभी-कभी कुछ लिख देता हूँ। आज से २५ वर्ष पुरानी फाइल में यह दो पंक्तियाँ पड़ी मिली थीं। किसी कवि ने लिखा था—

घन के साथ-साथ बिजली भी
कवि के पास कंठ होता है
कुछ असली भी, कुछ नकली भी
घन के साथ-साथ बिजली भी
घोंघे के सँग छिपी हुई है
जैसे पानी में मछली भी
घन के साथ-साथ बिजली भी
मैं दोनों ही लिख लेता हूँ
कविता भी औ, कजली भी
घन के साथ-साथ बिजली भी

ज्यादा शोर हो जाने के बाद स्वतः कविता बन्द हो जाती है। कवि लोग डेरे पर से उत्सव-स्थल पर आ गये हैं। स्थानीय कवि अधिक हैं। कुछ व्यक्ति बाहर से भी पधारे हैं।

सवि-कम्मेलन के सभापति पण्डित सीताराम चतुर्वेदी ने सर्व-प्रथम एक छोटा वक्तव्य दिया। भीड़ चेतना खो बैठी। कान खोल-खोलकर और आँखें मींच-मींचकर लोग कविता सुनने और उपस्थित कवियों का रूप-रस पान करने बैठ गये। आपने कहा—

उपस्थित कवि-बन्धुओ और श्रोतागण, समय काफी हो चला है। आज होली का अवसर है; यह तो आप जानते हैं—कवियों को कई जगह जाना था। सभी लोगों का आग्रह पूरा करना होता है। सम्भवतः देरी भी इन्हीं कारणों से हो गयी है। अब आप लोग भी अधीर हो चले हैं। सम्मेलन शुरू ही हुआ चाहता है। सर्व प्रथम श्रीजैवेन्द्र कारखाई प्रारम्भ करेंगे। काशी के युवक कवियों में आप काफी ऊपर चढ़े हुए कवि हैं। आपका कण्ठ तो और भी···

[जैवेन्द्र आते हैं। पैर पीछे फेंककर बैठ जाते हैं। इधर-उधर ताककर खँखारते हैं—खँ...खँ...खाँ। फिर सिर उठाकर एक गीत शुरू करते हैं। समाँ बाँध देते हैं।]

ये दीप जल रहे हैं।

बरसात का समय है घन बूँद बम बरसते।
छाता 'सुराज्य' का ले प्रियतम पड़े तरसते॥
लेक्चर सुना-सुनाकर मेढक उछल रहे हैं।
पण्डाल में हमारे नेता न रो रहे हैं॥
साकार स्वर में स्वर भर प्रस्ताव हो रहे हैं।
जब-जब पहाड़ खोदें चूहे निकल रहे हैं॥

हम हाथ जोड़ते हैं वे हाथ छोड़ते हैं।
हम नेम तोड़ते हैं वे प्रेम तोड़ते हैं॥
यह प्रेम ठीक काई जिसपर फिसल रहे हैं।
यह तेल भी जमीं का पेट्रोल हो रहा है॥
बिजली चमक न पाती कण्ट्रोल हो रहा है।
अब वल्ब की जगह-पर कुछ दीप जल रहे हैं॥
कोयल कुहुक रही है बादल तड़प रहा है।
धमकी सुना-सुनाकर यह दिल हड़प रहा है॥
मीठी सुना-सुनाकर वे विष उगल रहे हैं।
हम हाथ मल रहे हैं॥

बाद में फिर सुनाने का वादा कर चले जाते हैं। अब कुछ नये कवि आयेंगे—ऐसी उम्मीद की जाती है। जैवेन्द्र जी को तो सिर्फ उद्घाटन करना था, जो हो चुका।

'अब उजागर सिंह जी आपके सम्मुख आयेंगे। आप हाई स्कूल की परीक्षा इस वर्ष देंगे। आपका भविष्य उज्वल है। आप कविता भी लिखने लगे हैं।' सभापति ने कई विद्यार्थियों का परिचय दे उन्हें सामने किया।

उजागर जी ने काँपते-काँपते दो-तीन चीजें धड़ाधड़ सुनायीं। सब छोटी-छोटी चीजें थीं। एक कविता यों थी—

हम बिलकुल लडके-वाले हैं! यह कितना मस्त जमाना है
'यस' नानी है 'नो' नाना है, अलजबरा के अध्याय सभी
यों लगते पदमें साले हैं हम बिलकुल लडके-वाले हैं!
कुछ अध्यापक भी साथी हैं कुछ घोडे हैं, कुछ हाथी हैं
कुछ ठीक परीक्षाके 'टाइम' सब प्रश्न बताने वाले हैं
हम बिलकुल लडके-वाले हैं!

यह प्रेम मुहम्मद गोरी है दिल मन्दिर में कमजोरी है।
हम जिसकी रक्षा की खातिर, हरदम लटकाये ताले हैं॥
हम बिलकुल लड़के-वाले हैं।

वाह-वाह और तालियों की तड़तड़ाहट के बाद एक दूसरा विद्यार्थी पुनः उठाया गया। काफी कम्प और पसीना छूटने के बाद उसने जो रचना सुनायी उसका एक भी छन्द बैठ नहीं रहा था, उसे गाने में खुद अड़चन हो रही थी—

यह जीवन मेरा जाड़ा है, यह कविता नरम रजाई है।
पर उससे सुन्दर नाता है, मैं देवर, वह भौजाई है॥

ऐसे ही कई छन्द सुनाकर जब विद्यार्थी उठने लगा, तब लपक कर काशी के एक पुस्तक-प्रकाशक ने उसे अपनी एक पुस्तक समर्पित करने का वादा किया।......कई नवयुवक, नये कवि बार-बार उठाये गये। फिर आधे घण्टे के पश्चात् असली सवि-कम्मेलन प्रारम्भ हुआ।

'अब हम काशी के प्रसिद्ध कवि श्री अवस्थी प्रसाद जी कमला अर्थात् श्री अशोक जी को आपके सामने उपस्थित कर रहे हैं। आपने कविता के क्षेत्र से अपनी टाँग जरा खींच ली, अन्यथा हिन्दी-साहित्य लबालब हो उठा होता। आप उस समय एक सफल कवि थे, जब अंचल वगैरह गुल्ली-डण्डा खेलते थे। आपने जवानी पर लिखा है।

कवि अशोक जी (सुना रहे हैं—

है कितनी अनुकूल जवानी, कवि के सम्मुख धूल जवानी।
मन्द जवानी मस्त जवानी, पग-पगपर है पस्त जवानी॥
यह हैरत अंगेज जवानी, सुस्त जवानी, तेज जवानी।
सिर पर भी तुम लाद जवानी, क्यों करते बरबाद जवानी॥

तन में डावाँडोल जवानी, खोल रही है पोल जवानी।
मत पीटो अब ढाल जवानी, नहीं मिलेगी मोल जवानी॥

कुछ विशिष्टजनों के आग्रह के पश्चात् आपने अपने कण्ठ का उपयोग कर कुछ दूसरी चीजें भी सुनायीं। तालिकाओं की तड़तड़ाहट के पश्चात् आप अपनी जगह जा बैठे। सभापति के विशेष आग्रह से कविवर गुरु बनारसी पहले ही मञ्च पर आ धमके, लोग कारण जानना चाहते थे। सभापति ने बतलाया आपने आज कुछ अधिक मात्रा में बूटी का प्रसाद ले लिया है, अतः शीघ्र ही सेवा में उपस्थित हो पिंड छुडाना चाहते हैं। आप हिन्दी जगत् में बनारसी भाषा के अकेले महाकवि हैं। बनारस वाले तो आपसे परिचित ही होंगे। श्रीगुरु बनारसी [श्रीशिव प्रसाद मिश्र 'रुद्र'] ने सुनाया। कविता का शीर्षक 'उपदेश' है।

अगिन के लाल लपट के तरे लहकत हौ अऽ
फुलबगिया के तरे धार तू महँकत हौ अऽ
बन के बुलबुल तू चपक कान से चहकत हौ अऽ
घूम मस्ती में झपट झूम के बहकत हौ अऽ
आँख रक्खलऽ तूँ जेहर खराब हो जाला
सुद्ध गंगा कऽ भी पानी खराब हो जाला।

[२]

चाल चौपट हौ, तरीका तोहार तिरपट हौ
होत बाहर जऽ हौ खटपट, तऽ घरे कटकट हौ
जिन्नगी जान लऽ गंगाकऽ घाट औ घट हौ
पाँव अटपट जऽ पड़ल सदाकऽ झंझट हौ
माँग में फार बनौले तूँ तरेरा बाटऽ
चलऽ समुझ के बडे बापकऽ बेटा बाटऽ

[३]

आँख फेर जाई बड़ी दरद उघर आई।
दर जिगर जाई जऽ तोहरोतऽ कदर जाई ॥
बन भी जर जाई, औ बस्ती बसल उजर जाई।
बनबऽहरजाई तऽ बह खून कऽ नहर जाई ॥
मजा जऽ पूछऽ जगत मे तऽ चाह मे बाटै।
चाह से चढ़के मजा फेर निबाह में बाटै ॥

गुरु बनारसी के हटते ही कवि श्री 'अटल' जी साग्रह बुलाये गये। आपने कविता सुनाने के पूर्व जो अपना छोटा-सा वक्तव्य दिया उससे सभा में एक तहलका-सा मच गया। आपने जो रचना सुनायी उसकी कुछ पंक्तियाँ बानगी के लिये—

घन, तुम बड़े समय पर आये, घन, तुम बड़े समय पर आये।
बहुत समय से ही बैठे थे, हम तो आशा में मुँह बाये ॥
घन, तुम बड़े समय पर आये।

[कविता सुनते ही लोग आसमान में ताकने लगते हैं। 'अटल' जी पढ़ते जा रहे हैं।]

'अब आपका मैं अधिक समय न लूँगा' का पवित्र सन्देश देकर जब 'अटल' जी उठे तब बड़े जोर का शोर मचा—'वन्स-मोर' 'वन्स-मोर' ·· ··एक और एक और। मगर जब उठ गये तब क्या बैठना ? सभापति ने भीड़ शान्त कर कहा—प्रयाग के कवि गोपेश अब आप का मनोरञ्जन करेंगे। आप होली के अवसर पर अपना घर छोड़कर कहीं नहीं जाते, पर मेरे कुछ विशेष आग्रह और आपके संयोजक जी के प्रेम के कारण उपस्थित हो गये हैं। आपकी एक प्रसिद्ध रचना है 'मुझसे मेरा नाम न पूछो।'

'गोपेश जी कुछ ताक-झाँक कर हाथ जोड़ जनता को नमस्कार करते हुए लाउड स्पीकर के सम्मुख आ बैठते हैं। और दूसरे

ही क्षण लोगों ने सुना—वे कुछ कह रहे हैं।...मैं थका हुआ हूं। गला भी बैठा हुआ है। इसलिए आप लोगों की अधिक सेवा तो नहीं कर सकता, खैर फिर भी'' और कविता पाठ शुरू होता है।

मुझसे मेरा नाम न पूछो, मैं कविवर हूँ मैं काला हूँ।
कविता चिल्लाने वाला हूँ, इस दुनिया में क्या करता हूँ॥
काम बढेगा, काम न पूछो, मुझ से मेरा नाम न पूछो।
मैं पूरा परगति वादी हूँ, अमरूद इलाहाबादी हूँ॥
मैं सड़ता हूँ क्यों सड़ता हैं, गेहूँ का गोदाम न पूछो।
मुझसे मेरा नाम न पूछो॥

यह कविता भी है तो छोटी सी, किन्तु गोपेश जी ने प्रत्येक छन्द तीन-तीन बार सुनाया, अतः समय समाप्त हो गया और फिर सुनाने का वादा कर आप अपने स्थान पर जा बैठे। तालियों की तड़तड़ाहट से एक वृद्ध श्रोता सज्जन के कान का परदा फटते-फटते बचा था, अतः चतुर्वेदी जी (सभापति) ने हिदायत दी कि अच्छी कविताओं पर आप लोग केवल गद्गद् हो जाया करें। चाहें तो झूम भी सकते हैं, किन्तु शोर न मचायें।

आपको जानकर प्रसन्नता होगी कि मोती बी० ए० के सिनेमा में चले जाने के बाद उनका स्थान श्री कुँवरबहादुर सिंह को दिया गया था। अतः अब आपके सामने कुँवर जी आ रहे हैं। सभापति के संकेत करते ही कवि जी आ विराजे और फिर बहुत ही क्षीण स्वर में आप कविवर शम्भूनाथ सिंह की ओर मुँह कर कविता सुनाने लगे। पीछे मालूम हुआ कि आप कवि-मण्डल से प्रेरणा प्राप्त कर रहे थे।

फूलवाली, ''फूल की मनुहार लेकर क्या करूँगा ? ('जरा जोर से और जोर से' की आवाज) खैर, बहुत धैर्य के साथ आप कविता सुनाकर अपने स्थान पर आ बैठे और शम्भूनाथ जी'कविता सुनाने पहुँचे। पहुँचते ही आपने पाठ शुरू कर दिया। मैं तुम्हें अखबार में पढ़ता रहा तुमने न जाना। रूप की माया तुम्हारे केमरा से था चुराया। फ्रेम-शीशा के सहारे वेश को मैंने सजाया। मैं तुम्हें तसवीर मे मढ़ता रहा तुमने न जाना।

जब शम्भूनाथ जी ने एक पर एक तीन कविताएँ सुना लीं तब कितने श्रोता रस के मारे भींग चुके थे। अतः कुरता आदि निकालने लगे। सब लोग अभी कविता सुनने के 'मूड' में दुबारा आये भी नहीं थे कि कविवर रसराज नागर को सभापति जी ने उठा दिया। आपने बहुत चढ़ाव-उतार के साथ आधे दर्जन सवैये सुनाये। रससिक्त होने के कारण जनता इसमें चुभ-चुभ होने लगी अत यह ठहरा कि इसके बाद मिश्र जी अपना एक लम्बा-सा गद्य-काव्य होली पर सुना दें। बीच-बीच में 'टेस्ट' बदलता रहे। होली पर सुनाकर आपने 'बनना और बनाना' गद्य पढ़ दिया। लोग मुँह बनाये सुनते रहे। इस निबन्ध से 'सवि कम्मेलन में एक नयी स्फूर्ति-सी आ गयी।

अब प्रगतिशीलों की बारी थी, कई प्रगतिशील जुटे थे। नामवर सिंह, सिगार सिंह, ठाकुर प्रसाद सिंह, शिवमङ्गल सिंह कौन कवि पहले प्रतिनिधित्व करेगा, इस बात का झगड़ा था। श्री ठाकुरप्रसाद सिंह ही पहले उठे। आपने 'भूख-भूख' ऐसा चिल्लाया कि कुछ श्रोताओं को फिर से अर्ध-रात्रि में भूख लग गयी। कुछ लोग सवि-कम्मेलन में बिना खाये पीये भी चले आये थे, अतः उनको 'भूख' पर कविता बेहद पसन्द आयी। बाद मे सुमन जी उठे। आपने प्रर्थना की कि पण्डित जौहर नारायण

पाण्डेय जी को पढने दिया जाय, वे आप सबके गुरुजन हैं। उनके सामने हम लोग अभी बच्चे हैं। आदि-आदि।

'हल्दीघाटी' के रचयिता वहाँ बैठे थे, झट जोश में आ गये और अपने चेलों से झपट कर आपने झोला छीन लिया। सुनाने बैठ गये। पूरी कविता तो याद नहीं, ४ रुपये का 'जौहर' खरीद कर पढी जा सकती है; किन्तु एक छन्द मुझे याद है अब भी—

जल गयी रानी रुई-सी स्मृति सुई-सी गड रही है।
आगे था शायद
और कविको अब तड़ातड़ वह तमाचा जड रही है।

आपको कुछ धनी व्यक्तियोंने पुरस्कृत भी किया। एक सज्जन ने कहा कि जब आप फिर एक से दो हो गये, तब दो से तीन होने का सफल प्रयत्न करें। हम उसी अवसर पर आपको ५०१) का पुरस्कार देना चाहते हैं। कवि ने इस पुरस्कार को ठुकरा दिया।

सभापतिजी ने हास्यरस के आचार्य और पण्डित जौहर-नारायणजी के मित्र पण्डित कान्तानाथ पाण्डेय 'चोंच' (अब 'हंस') को साग्रह बुलाया। जनता ने नाम सुनते ही एक बार तालियो की तड़तड़ाहट से आपका स्वागत किया। कुछ गम्भीर सवैये सुना लेने के अनन्तर आपने 'हल्दीघाटी' के ठीक १३ दिन १३ घण्टे बाद निमित 'चूनाघाटी' नामक महाकाव्य सुनाया। जनता के पेट मे हँसते हँसते बल पड़ गया था अतः कुछ लोग जी छुड़ाकर भागने लगे। पेट रहेगा तो बार-बार कविता सुनी जायगी।

सुमनजी ने जब जनता के आग्रह पर 'नयी आग है, नयी आग है' अपनी रचना सुनायी, तब कुछ लोगों को पसीना छूट रहा था। देह झकझोरने के बाद सुमनजी भी पानी माँगने लगे। संयोजकजी ने दौड़कर पानी भी ला दिया। पसीना पोंछते हुए

कविजी ने पानी पीया और अपनी 'नयी आग' खतम की। इसी के बाद मेरा नाम भी सभापति जी ने चिल्ला कर बोल दिया। मैं उस समय सो रहा था। खैर, किसी प्रकार गिरता-पड़ता पहुँचा। अपनी वह रचना पढ़ने लगा जिसमें स्व० जिना की प्रशंसा की गयी है।

बैठे जिना बगल में लीगी किस्सा चलता रहा रात भर
कैसे यहाँ अरब के बादल आशिक बन फिर मड़रायेंगे
कैसे यहाँ अरब के मुरगे उड़ते-उड़ते आ जायँगे
कैसे मुसलिम राजा होगा कैसे पाकिस्तान बनेगा
कैसे काफिर की बस्ती में सुन्दर कब्रिस्तान बनेगा
बात-बात में भूत लीग का रूप बदलता रहा रात भर
किस्सा चलता रहा रात भर

कविवर बेधड़क बनारसी ने कुछ रुबाइयाँ सुनायीं, जिन्हें हिन्दी में चोखे-चौपदे कहते हैं। लोग उछल पड़ते थे। एक रुबाई थी—

मुण्डे-मुण्डे मतिभिन्ना देखे एक से एक बढ़ टिन्ना देखे
बेधड़क देखे यों लीडर लाखों खूब बीहड़ मगर जिन्ना देखे

दूसरी रुबाई है—

क्या सुनायें प्रेम का क्या हाल है
जो मिला प्रेमी हमें, चण्डाल है
किक पै किक है वह लगाता बेधड़क
दिल हमारा बन गया फुटबाल है

श्री बेढब बनारसी ने एक छोटी-सी चीज सुनाकर पिण्ड छुड़ाया। आपका कहना था कि मैं आजकल भस्म का सेवन कर रहा हूँ अतः एक छोटी-सी चीज सुन लीजिये। आ गया हूँ। इसलिये तबीयत ठीक नहीं है।

गलियों में घूमता है घर-घर से वापसी है
बूटे हैं दाग दिल के रगत से वेकसी है
ढेले हुए जिगर के है तार—तार टूटा
प्रेमी की जिन्दगी भी साड़ी बनारसी है

जनता के बहुत आग्रह पर आपने अपना ऊँट वाला राष्ट्रीय गीत भी सुनाया।

अन्त में सभापति जी ने जनता को उसकी धीरज भरी बेवकूफी पर धन्यवाद देते हुए मीरा के सुन्दर पद सुनाये। रस-खान के सवैयों से सवि-कम्मेलन की कारवाई खतम हुई और रात मे कवि लोग 'होली' के दिन बना पेय और जलपान समाप्त करने के लिए जुट पड़े। भीड भी कान-पूँछ झाड़कर घर की ओर चल पड़ी।

सम्पादकों की किस्म

दुनिया में वन्दरों की कोई किस्म नहीं होती। यदि किसी ने जाति-विभाग कर भी दिया हो तो भी सभी वन्दरों का मुँह एक-सा होता है। इसी प्रकार घोड़ों की किस्म नहीं होती, (मेरे खयाल से) सबको चार पैर होते हैं, सव पीठ पर ढोते हैं, सव हिनहिनाते हैं। सव भूसा खाते हैं या नहीं, चाबुक अवश्य खाते हैं। ऐसे ही गधों की भी कोई किस्म नहीं होती। सभी मूर्ख होते हैं। सूरत से मूर्खाधिराज। बेहद परिश्रमी। चीपों-चीपों करने वाले। डण्डा खानेवाले। यदि किसी की किस्म होती भी है तो वह सम्पादक हैं। सम्पादक एक ऐसा जन्तु है जिसकी अनेक किस्में हैं। किस्मों की कोई गणना नहीं है।

सम्पादक दो टाँग, दो कान, चार आँख, आधी नाक, एक हाथ, १२ पसली, एक पेट और आधी (औंधी) खोपड़ी का ऐसा जन्तु है, जिसकी अपनी विशेष किस्में हैं।

यह सफेद कमरे में रहता है। जिस कमरे में रहता है, उसके प्रवेश द्वार पर लिखा रहता है, 'सम्पादकीय-विभाग'। द्वार पर चिक टँगी रहती है। यह परदा में नहीं रहता। स्वदेशी चीजें पसन्द करता है। सम्पादक एक लकड़ी के यन्त्र पर वैठता है जिसके चार पैर होते हैं। उसके सम्मुख एक लकड़ी का तख्त रहता है जो उसकी कमर इतना ऊँचा होता है और जिसके चार पैर होते हैं। यह तख्त गुदड़ी बाजार से आधे दाम में खरीद कर मँगाया जाता है।

उसके तख्त पर अपनी तकदीर की आरती करने के लिए एक

घण्टी, दो बिना स्याही की सूखी दावातें, दो सात वर्ष प्राचीन होल्डर (कलमें), दो दर्जन पत्थर के ढेले और एक तख्ती पड़ी रहती है। कुछ सम्पादकों के हाथ में एक लकड़ी का नपना भी पड़ा रहता है।

जिस सम्पादक के पास ७ ब्लेड, एक कैंची, डेढ फुट का लोहे का लेड, थोड़ी-सी लेई, एक दर्जन लिफाफा, एक प्रोस कार्ड और एक गद्दी स्लिपें न हों, वह सम्पादक नहीं माना जाता।

सम्पादक के कमरे में सर्वदा शान्ति नहीं रहती, कभी-कभी शान्ति आ जाती है। उस समय हर एक सम्पादक बहुत प्रसन्न होता है। वस्तुत यह जन्तु अद्भुत है। अब इसकी किस्मों के बारे में सुनिये।

कुछ सम्पादक कवि, लेखक, कहानीकार और प्रूफरीडर सब कुछ होते हैं। यदि पत्र के लिए कविता नहीं मिलती, तो अपनी कविता छाप लेते हैं। नाम बदल कर किसी कुमारी को श्रेय देते रहते हैं। ये कविता लिखने का कार्य जाननेवाले सम्पादक लेखों का शीर्षक भी कविता में ही देने लगते हैं। दूसरे कवियों को बहुत ठोंक बजाकर प्रकाश में लाते हैं। अधिकतर कवियो के पत्रों का इसलिए उत्तर नहीं देते कि वे स्वयं कवि होते हैं।

कुछ सम्पादक केवल लेखक होते हैं। ऐसे सम्पादक दिन में दफ्तर में प्रूफ देखते, लेख लिखते और जीविका सँभालते रहते हैं, रात में घर पहुँचकर दूसरे अखबारों को लेख लिखते हैं। लेखक जाति के सम्पादक अन्तर्राष्ट्रीय लेखों को अधिक महत्व देते हैं, यदि दैनिक पत्र में काम करते होते हैं तो केवल अग्रलेख लिखते हैं, मासिक मे एक नाम से तीन लेख लिखते हैं। साप्ताहिक में एक लेख भी नहीं लिखते, बल्कि उनका लेख दूसरे साप्ताहिकों में छपा मिलता है।

ऐसे सम्पादक जो कोरे कहानीकार होते हैं, दूसरे कहानीकारों की कहानियाँ पसन्द नहीं कर पाते। दूसरों की कहानियाँ उन्हें पसन्द आती ही नहीं।

कुछ सम्पादक केवल प्रूफरीडर होते हैं। वे सम्पादक को प्रूफरीडर समझते हैं और प्रूफरीडरी (प्रूफ देखने) को सम्पादन। चश्मा के भीतर से निखोर-निखोर कर प्रूफ देखते हैं।

जो सम्पादक सर्वज्ञ होते हैं, वे लेखकों को सिर्फ मूर्ख ही नहीं समझते, बल्कि उनकी रचनाओं को पढ़ना भी अनुचित समझते हैं। ऐसे सम्पादक दफ्तर में लेख पहुँचने के तीसरे महीने में उसका दर्शन करते हैं, चौथे मे उसे खुद हाथ से छूते हैं, पाँचवे में पढ़ते हैं, छठवें में निर्णय देते हैं और सातवें मास में जब लेखक के एक दर्जन पत्रों से घबड़ा उठते हैं तब गुस्से में आकर उस लेख के ही मुखपृष्ठ पर 'सधन्यवाद वापस' लिख कर बुकपोस्ट से लौटा देते हैं। सर्वज्ञ सम्पादकों से पत्र के मैनेजर भी डरते रहते हैं।

कुछ सम्पादक नस्ल से नेता होते हैं, कुछ अक्ल से उल्लू, बात-चीत से घोंघा। कुछ पहले सम्पादक होते हैं, तब नेता होते हैं, कुछ नेता पहले होते हैं, बाद में सम्पादक। नेता सम्पादक हो तो जनता का अधिक कल्याण होता है। किन्तु सभी सम्पादक नेता नहीं, साहित्यिक होते हैं जो साहित्यिक हो, वही सम्पादक हो—यह अनुचित है।

कुछ सम्पादकों को 'हें हें' करने से फुरसत नहीं मिलती तब वे कटिंग से काम चलाते हैं। ऐसे सम्पादकों की कैंची बढ़िया होती है। काटने का काम अच्छा करते हैं।

कुछ सम्पादकों के लिए यह आवश्यक नहीं होता कि उन्हें अच्छी हिन्दी का ज्ञान हो, सबसे अधिक आवश्यक यह होता

है कि उन्हें गलत-सही अंग्रेजी का ज्ञान हो। ऐसे सम्पादक अंग्रेजी अच्छी तरह समझते हैं, जब दफ्तर से घर लौट जाते हैं तब लोग उनकी लिखी हिन्दी दूसरों से समझते हैं।

कुछ सम्पादक लिखते समय अक्षरों का माथा नहीं बाँधते, कुछ बाँधते चलते हैं। जो माथा नहीं बाँधते वे बतलाते हैं कि अपने ऊपर किसी की गद्दी नहीं पसन्द करते। जो माथा बाँधते हैं। उनका मतलब है कि उनके सिर पर किसी न किसी की साया अवश्य है।

सम्पादकों की एक किस्म ऐसी होती है जो दूसरों को सिर्फ गाली देना ही पसन्द करती है। ऐसी जाति से लोग बहुत डरते हैं। कुछ सम्पादक रिपोर्टर को प्रेम से डाँटते हैं, कुछ घुड़क कर काम चलाते हैं, कुछ रिपोर्टरों के ही बल पर जीते हैं। कुछ सम्पादक खास मौकों पर—जैसे, पार्टी-भोज या बड़े नेताओं के आने पर—रिपोर्टरों को पीछे ठेल कर खुद आगे आ जाते हैं।

कुछ सम्पादकों को केवल मेकप कराने आता है। कुछ को केवल लेखों को काट छाँट कर छोटा बना देने आता है। कुछ मैटर देखते ही काटने दौड़ते हैं। कुछ प्रूफरीडर से सम्पादक होते हैं, फोरमैन से प्रूफरीडर, तब सम्पादक होते हैं। कुछ सम्पादक फोरमैन के सहारे-सहारे चलते हैं, कुछ फोरमैन से सीख कर आगे बढ़ जाते हैं।

कुछ फोरमैन ही सम्पादक भी होते हैं। इन्हें आधा सम्पादक कहते हैं आधा फोरमैन। कुछ सम्पादक समाचार का शीर्षक नहीं लगाते, शीर्षक से समाचार बना लेते हैं। कुछ सम्पादकों को शीर्षक लगाने का शऊर यदि होता है तो अनुवाद करने का नहीं होता, यदि वे अनुवाद कर भी लेते हैं तो उसका शीर्षक दूसरे लगाते हैं।

कुछ सम्पादक केवल हिन्दी जानते हैं। अंग्रेजी (कामचलाऊ भी) नहीं जानते। ऐसे सम्पादक चाहे जितने 'सिनियर' हों, ठेलकर पीछे रखे जाते हैं। कुछ सम्पादक कुछ सम्पादकों से चिढ़ते हैं, इस सम्बन्ध में सिद्धांत सुना जाता है कि वह सम्पादक नहीं, जो सम्पादकों से चिढ़ना न जाने।

सम्पादकों को सींग नहीं होती। उनके तीव्र घ्राण-शक्ति होती है। वे सूँघकर उन बातों का पता लगा लेते हैं जिनका पता हम आप टटोल कर भी नहीं लगा पाते।

सम्पादकों की किस्में बहुत सहनशील होती हैं। सब कुछ बर्दाश्त कर लेती हैं चाहे जितना भी दबाव डालिये सम्पादक भार बर्दाश्त कर लेगा, चूँ भी न करेगा। कुछ सम्पादक हड़तालों का समाचार मोटे हरूफों में छापते हैं, मगर खुद हड़ताल नहीं करते। ऐसे सम्पादक शोषितों का बहुत पक्ष लेते हैं, मगर अपने शोषण के खिलाफ आवाज उठाना जघन्य अपराध समझते हैं।

कुछ सम्पादकों का अपना संघठन भी होता है, मगर उसके मन्त्री या अध्यक्ष बछिया के ताऊ होते हैं। ऐसे संघठनों के मन्त्री या अध्यक्ष जलपान की व्यवस्था मात्र करते रहते हैं। संघठन अपने आप होता रहता है।

कुछ सम्पादक बहुत स्वाभिमानी होते हैं, जैसे वे झाड़न (डस्टर) न मिलने पर मैनेजर से झगड़ जाते हैं या चपरासी न मिलने पर क्लर्कों को घुड़क तक देते हैं।

आजकल सम्पादकों की एक ऐसी जाति भी पैदा हो गयी है, जिसे प्रत्येक पतले-दुबले युवक को (जो बन्द गले का कुरता, चप्पल, पायजामा पहनता हो) देखकर 'कम्युनिस्ट' का भ्रम हो जाता है। ऐसे सम्पादक रात में तीन बार सपना देखते हैं कि

उनका गला कोई 'कम्युनिस्ट' दबोच रहा है। कुछ सम्पादक राष्ट्रीय पत्र में काम करते हैं मगर खद्दर नहीं पहनते, चरखा नहीं चलाते। कुछ सम्पादक जो स्वतन्त्र पत्र मे काम करते हैं, कभी राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ में काम करते दीखते हैं, कभी समाजवादी दल में, कभी कांग्रेस मे।

कुछ सम्पादको की ऐसी किस्म भी होती है, जो पत्र मे खुद काम करते हैं, मगर पत्र पर श्रद्धेय व्यक्ति का नाम अवश्य छापते हैं, चाहे वह एक ही हो या आधा दर्जन। कुछ सम्पादको को सिर्फ काम करने का अधिकार होता है, नाम दूसरे कमाते हैं, कुछ नाम स्वयं कमाते हैं, काम दूसरे करते हैं।

कुछ सम्पादक अनाज नहीं, हवा खाते हैं, प्यास लगती है तब भी हवा ही पीते हैं। ऐसे सम्पादकों को वेतन समय से वह नहीं दिया जाता। कुछ जिस पत्र मे काम करते हैं उसी मे अपने चचा, भतीजे' भाई के नाम से लेख छापकर अपने घर मे ही पुरस्कार रख लेते हैं।

कुछ सम्पादकों को वाद-विवाद में अधिक आनन्द आता है। कुछ को किसी को छोड़ने पर सख्त अफसोस होता है। कुछ टेली प्रिंटर के सहारे अखबार निकालते हैं, कुछ हाथ-लपकी के सहारे। कुछ दफ्तर मे बैठ कर अपनी चिट्ठियाँ यदि १२ लिखते हैं, तो दफ्तर की ३। कुछ सम्पादक समालोचना के लिये आयी हुई किताबों की बदौलत पुस्तकालय खड़ा कर देते हैं। कुछ सम्पादकों का घर परिवर्तन में आये पत्रों के सहारे वाचनालय बन जाता है।

सम्पादकों की उतनी किस्मे हैं, जितनी मच्छरों की नहीं है। मच्छर संघठित रहते हैं, सम्पादक छिटफुट।

लाठीचार्ज

डिसचार्ज व इञ्चार्ज के बाद जब कान में लाठीचार्ज घुसा, तब सबसे अधिक प्रसन्नता लेखकों को हुई। बहुत दिन से बैठे-ठाले कट रहा था। लिखने को विषय मिला। जिस पर बैठकर, सोकर, रोकर-गाकर लिखने की इच्छा जागी।

चेहरे पर जो स्थान नाक का है, हथियारों में वही स्थान लाठी का है। जिसने हाथ की लाठी खोयी, उसने अपनी नाक खोयी। जिसके पास लाठी है, उसके पास नाक है। लाठी लम्बी होती है, बहुत काम करती है। नाक लम्बी रखिये, बहुत काम करेगी।

१४४ में सबसे पहले लाठी देखी जाती है। जिस तरह चील सड़क पर बिकने वाली कचौड़ी पर, कुत्ता नाली में भागने वाले न्योले पर झपट्टा मारता है, उसी प्रकार १४४ में पुलिस लाठी पर। अगर आप के हाथ में लाठी है, कोई कुछ नहीं कर सकता। आप ने लाठी खो दी, समझिये सब खो दिया।

हिन्दुस्तानियों ने अंग्रेजों को सब कुछ दिया, स्वतन्त्रता दे दी, पूरा देश दे दिया, रुपया-पैसा दे दिया, अनाज-पानी दे दिया, नदियाँ-पहाड़ दे दिया, तलवार दे दी, बन्दूक दे दी, लाठी नहीं दी। आप का बेटा बुढौती में लाठी के नाम से पुकारा जायगा। लाठी का बहुत महत्व है।

अब आया लाठी के बाद लाठीचार्ज। जिसने लाठी रखी,

मगर लाठीचार्ज नहीं किया, उसने लाठी का महत्त्व नहीं समझा। लाठी का महत्त्व समझने के लिये लाठीचार्ज जरूरी है।

आये दिन हम-आप डिस्चार्ज होते हैं, अखबारों के दफ्तरों के इञ्चार्ज होते हैं, मगर लाठीचार्ज के लिए हमें और कुछ बनना पड़ता है। डिस्चार्ज होना, इञ्चार्ज होना एक बात है, लाठीचार्ज होना दूसरी बात। कत्तई दूसरी बात।

लाठीचार्ज अन्ततः है क्या ? लाठीचार्ज क्या एक किस्म की हवा है जो विषवत रेखा और कर्क रेखा के बीच में उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम चलती है या लाठीचार्ज एक प्रयोग है जिसे महामान्य १००१०८ महाराजाधिराज स्वामी लाठीचार्जानन्द हिमालय की भयंकर गुफा में बैठ कर पूरा किया करते हैं या लाठी-चार्ज एक बुखार है जो अखबारों के दफ्तरों में १०६ डिगरी पर काम करता है।

लाठीचार्ज कुछ न कुछ हैं अवश्य। हो सकता है कोई होमियो-पैथिक दवा हो, कौन जाने अष्ट-सिद्धियों में से एक सिद्धि हो। कुछ लोगोंकी राय है कि लाठीचार्ज एक विशेष प्रक्रिया है जो सभा-जुलूसों से सम्बन्ध रखती है।

आप बिना टिकट लिये गाड़ी में बैठ जाइये, टी टी आपसे पेनाल्टी सहित भाड़ा चार्ज करेगा, खेल तमाशा देखने जाइये, कुछ लोग टिकट चार्ज करेंगे। आप मस्तीमें आन्दोलन कीजिये, बिना आज्ञा जुलूस निकालिये, पुलिस लाठीचार्ज करेगी। बिना चार्ज किये न आप बिना टिकट सफर करने पायेंगे, न खेल-तमाशा देख सकेंगे, न जुलूस निकाल सकेंगे।

आप प्रदर्शिनी देखने आये हैं ? मन-पसन्द चीजें नहीं खरीद

रहे हैं ? न साथ लिवा ही आये हैं ? सच मानिये घर सँभल कर जाइयेगा, नहीं तो बेलनचार्ज ···।

आप अधिकारी हैं ? फिर तनिक सँभल कर चलियेगा, अध्यापकों की हड़ताल है, कहीं लाठीचार्ज न कर दें।

आज भाषण सुनना है, बहुत से नेता आयेंगे। स्कूल कालेज बन्द नहीं हैं, अन्धेर है, आप हेडमास्टर हैं या प्रिंसिपल ? सँभल कर चलियेगा। छात्रों का दल लाठीचार्ज कर देगा।

आप सम्पादक हैं ? नमस्ते। आपने अपने लेखकोंको पैसा नहीं दिया अभी तक। मगर यह सच मानिये, आप पर निरीह लेखक लाठीचार्ज नहीं करेंगे।

बहुत-सी भेंड़ें इकट्ठी हैं। सब साथ चर रही हैं।······और यह देखिये एक मिनट भी नहीं बीता। सब हरे-भरे खेत में घुस गयीं। यहाँ अब लाठीचार्ज की जरूरत है।

जुलूस निकालना बुखार है, लाठीचार्ज दवा। गाली सुनना कठिनाई है, लाठीचार्ज हल।

पहले भीड इकट्ठी होती है, फिर नारे लगाये जाते हैं, तब रोक लगती है, फिर ढेले फेंके जाते हैं, जूते खोले जाते हैं, मुँह खोला जाता है, अन्तमें लाठीचार्ज होता है।

लाठीचार्ज मे लाठी मारी नहीं जाती। लाठी घुमाई जाती है। आहिस्ता-आहिस्ता, हलके-हलके। सर-सर। ठायँ ठायँ। लाठियाँ लगती नहीं; लाठियाँ बजती हैं। लाठी मारने के लिये नहीं घुमाई जाती, दिखाने के लिये घुमायी जाती है।

लाठीचार्ज किया नहीं जाता, लाठीचार्ज कराया नहीं जाता, लाठीचार्ज होता है। 'होना' क्रिया में हेतुहेतुमद् भूतकाल होता है। हेतुहेतुमद् भूतकाल कोई निश्चित काल नहीं है। नहीं भी होता, हो भी जाता है।

पहले ढेला आता है घाव लगता है, खून बहता है, दर्द होता है, गुस्सा आता है, तब लाठीचार्ज होता है। न ढेला आये, न घाव लगे, न खून बहे, न दर्द हो, न गुस्सा आये, न लाठीचार्ज हो।

जबतक ढेला नहीं आता, लाठीचार्ज नहीं होता। आप आँखों से ढेला मारिये, प्रेयसी लाठीचार्ज करेगी। आप ने बच्चों को सुबह या सिनेमा जाने के पहले पैसा नहीं दिया, सच जानिये आपपर अवश्य लाठीचार्ज होगा। बच्चे भी कहना नहीं मानते, माँ लाठीचार्ज कर देती है।

लाठीचार्ज के मूल में मन्त्र है। मतलब है—कहना मानिये। कहना आपने नहीं माना। सच जानिये, अवश्य लाठीचार्ज होगा।

लाठीचार्ज-लाठीचार्ज करते करते कहीं सम्पादक लेखक पर भी लाठीचार्ज न कर दे, इसलिए कानून के लाठीचार्ज से अपने को बचाने के लिये यह शब्दों का लाठीचार्ज अब यहीं समाप्त करता हूँ।

भूमिका बाँधिये

भूमिका बहुत सारगर्भित शब्द है। हैं तो कुल तीन अक्षर भू मि का; लेकिन काम करते हैं तीन हजार ३ सौ ८ अक्षरों का। जिस पाठक ने भूमिका न समझी उसने कुछ नहीं समझा, जिस लेखक ने भूमिका न लिखी उसने कुछ नहीं लिखा।

भूमिका पुस्तक मे भी होती है और भूमिका सिनेमा के विज्ञापन मे भी। सिनेमा का वह विज्ञापन व्यर्थ है जसिमें यह न बतलाया गया हो कि कौन किसकी भूमिका में उतर रहा है। राजा सुरेशचन्द्र की भूमिका में अशोक कुमार उतर सकता है, रानी सुशीला की भूमिका में लीला चिटनिस और मुरारी की भूमिका में चार्ली। सबकी अपपी-अपनी भूमिका होती है। किसी की भूमिका किसी से नहीं मिलती। जैसे किसी का चेहरा किसी अन्य मनुष्ये से मिल नहीं सकता।

असल मे भूमिका का महत्व पुस्तक मे ही होता है। वह पुस्तक ही क्या, जिसमें एक अच्छी खासी लम्बी-चौड़ी भूमिका न हो। बिना भूमिका के पुस्तक बिना सिकड़ी-ताले की आलमारी है। पुस्तक में भूमिका है, पुस्तक पूरी है। पुस्तक मे भूमिका की उतनी ही जरूरत है जितनी नयी दुलहन के ललाट पर टिकुली की। या बाल-रहित खोपड़ी पर गाँधी टोपी की। या बड़ी-बड़ी आँखों में बाबू साहब के सुरमे की।

जिसे पुस्तक लिखनी हो, बिना लिखे काम न चलता हो तो

हले उसे भूमिका लिख लेनी चाहिये। क्योंकि वह कहानी नहीं ज्ञसमे कथा वस्तु तीन लाइन मे हो और ३० पन्ने मे भूमिका हो। वह उपन्यास क्या, जिसमे ३० पृष्ठ मे कथा और ३०० ष्ठों मे भूमिका न हो। पुस्तक से अधिक जरूरी भूमिका होती । लोग पुस्तक देखकर पुस्तक नहीं खरीदते बल्कि भूमिका खकर पुस्तक खरीदते हैं।

वह कवि क्या, जिसके कविता-संग्रह मे भूमिका न हो, वह-प्रालोचक क्या जिसके ग्रन्थ मे भूमिका न हो। पुस्तक में विषय स्तु को समझाया जाता है, भूमिका मे उसका कचूमर निकाला जाता हे। जिसकी पुस्तक मे जितनी ही लम्बी भूमिका होती है, सकी पुस्तक उतनी ही जल्द बिक जाती हे।

पुस्तक मे लम्बी-लम्बी बातें कही जाती हैं, भूमिका मे गोल-गोल। पुस्तक पतले टाइप में छापी जाती है, भूमिका मोटे टाइप र। ग्रन्थ और भूमिका का वही सबध है जो स्त्री और पुरुष का। ग्रन्थ पुरुष है, भूमिका स्त्री है। वह पुरुष भकुआ है जिसकी स्त्री सुन्दर नहीं है।

लोग जब स्त्री के साथ सडक पर चलते हैं तब अपने को नहीं दिखलाते, अपनी स्त्री को दिखलाते हैं। जब ग्रन्थ बाजार मे चलता है, तब वह अपने को नहीं दिखलाता, अपनी भूमिका दिखलाता है, भूमिका सुन्दर नहीं है, ग्रन्थ व्यर्थ है।

भूमिका सिर्फ लिखी ही नहीं जाती, लिखाई भी जाती है। भूमिका लिखनेवाले किराये पर भी मिलते हैं, ठेके पर भी लिख देते हैं। भूमिका की लिखाई सिर्फ चापलूसी ही नहीं होती है, जन्मभर की दासता भी होती है। जिसने भूमिका नहीं लिखाई उसने पुस्तक लिखने में पूरा कष्ट नहीं किया। वह लेखक तब तक

नहीं मँज सकता, जब तक उसे किसी से भूमिका लिखाने के लिए प्रयत्न न करना पडे।

भूमिका लिखने वाले कई किस्म की भूमिका लिखते हैं। एक ऐसी भूमिका होती है जो पहले से लिखकर रखी होती है। दूसरी किस्म की भूमिका ऐसी होती है जिसमें बीच-बीच में जगह छोड़कर लिखी जाती है। जब जरूरत होती है स्थान भर दिया जाता है। तीसरी किस्म की भूमिका परिश्रम से लिखी जाती है। यदि लेखक की पुस्तक ३ महीने में लिखी गयी है, ६ महीने में छप सकी है, तो डेढ बरस में भूमिका लिखी जाती है। इसलिए भूमिका लिखाने में सतर्क भी रहते हैं, क्योंकि भूमिका लिखाने में पुस्तकें गायब भी हो जाती हैं या जैसी महत्व की पुस्तक होती है, लिखाने भर में उससे भी अधिक महत्व की पुस्तक बाजार में आ जाती है।

कुछ लोग दूसरे पुस्तक की भूमिका स्वयं नहीं लिखते, 'पर्सनल सिक्रेटरी' से लिखाते हैं, केवल नीचे दस्तखत कर देते हैं। कुछ लोगों के यहाँ लेखक अपनी भूमिका भेज देता है, वे दस्तखत करके भेज देते हैं।

जिसे अपनी पुस्तक में भूमिका लिखानी हो, उसे कम-से-कम उतने दिन दुर्गा-सप्तशती का पाठ भी अवश्य कर लेना चाहिये, जितने दिन में वह पुस्तक तैयार हुई है। भूमिका जब नहीं मिलती तो कुछ पुस्तकों मे भूमिका के स्थान पर उस घटना का उल्लेख ही मनोरंजक हो जाता है कि, क्यों नहीं भूमिका लिखी जा सकी।

प्रतिभावान पुस्तक लेखक छोटे-मोटे लोगों से पुस्तक की भूमिका नहीं लिखाते। वह चोटी के नेताओं से भूमिका लिखाते

हैं या चोटी के साहित्यिकों से या चोटी के विद्वानों से। पुस्तक के टायटिल पर पहले भूमिका-लेखक का नाम रहता है, फिर पुस्तक लेखक का। जिसने भूमिका-लेखक का नाम अपने नाम के बाद दिया, उसकी पुस्तक जल्द नहीं बिकती।

वह प्रकाशक क्या, जिसने भूमिका लिखने वालों की सूची न रखी हो। जिस तरह कम से-कम समय में अच्छी-से-अच्छी पुस्तक लिखने के उपाय होते हैं उसी तरह कम-से-कम समय में बड़े-से-बड़े लेखक से भूमिका लिखाने के उपाय होते हैं।

पारसाल हिन्दी की वह पुस्तक अत्यधिक संख्या में बिकी, जिसमें लेखक ने कविताएँ लिखी थीं, किन्तु जिसकी भूमिका में विद्वान् भूमिका-लेखक ने लिखा था कि 'निबन्धों का संग्रह पण्डित रामचन्द्र शुक्ल के निबन्ध संग्रहों के बाद पहिली बार हिन्दी में आ रहा है। यदि साहित्य-सम्मेलन जैसी संस्था ने इन निबन्धों पर मङ्गला प्रसाद-पुरस्कार नहीं दिया तो वह कर्तव्य से च्युत समझी जायगी।' आदि-आदि।

कुछ लोग अपनी पुस्तक में भूमिका नहीं लिखाते, न लिखते ही। ऐसी पुस्तकें हलकी होती हैं। उनमें वजन नहीं होता, मोटी होने से वजनदार हो भी जाँय पर बेदम होती हैं। बिना पुस्तक की भूमिका ठोंकने पर टूटी थाली की भाँति आवाज करती है। नकली अठन्नी बाजार में चल जाती है। बिना भूमिका की पुस्तक चलते किसी ने नहीं देखा।

भूमिका केवल लिखी ही नहीं जाती, बाँधी भी जाती है। वह पति क्या, जो रात में घर पर देर से पहुँचने की स्थिति में पत्नी से लम्बी चौड़ी भूमिका न बाँध सकता हो। वह लेख क्या, जिसमें पहले भूमिका न बाँधी गयी हो। वह झूठी बात क्या, जिसमें

भूमिका बाँधने की जरूरत न पड़ी हो। बात करने के पहले भूमिक
बाँधना बहुत जरूरी होता है। संयोजक आयोजन देर से शुरु
करने पर पहले भूमिका बाँधता है। वह वकील क्या, जो अच्छी
भूमिका न बाँध सकता हो, वह मुवक्किल क्या, जिसने भूमिक
बाँधकर घटना नहीं सुनायी। वह सम्पादक क्या, जिसने अग्रलेख
में भूमिका नहीं बाँधी। भूमिका बाँधने के लिए जरूरी है कि
आपकी खोपड़ी में भूमिका बाँधने का माद्दा हो।

प्रेम की भूमिका पत्र में बाँधी जाती है। वह प्रेम कभी नहीं
चल सकता, जिसमें भूमिका का सहारा न लिया गया हो। कर
की भूमिका चिकनी-चुपड़ी बातों मे बाँधी जाती है। उसे कभी
कर्ज नहीं मिल सकता, जिसने भूमिका बाँधने में भी कमजोरी
दिखायी।

भूमिका लिखने या बाँधने के लिए आवश्यक होता है कि थो
अभ्यास किया जाय। जिसने अभ्यास नहीं किया, वह न भूमिक
लिख सकता है, न बाँध सकता है। हिमालय की गुफा में ६ व
कम-से-कम महात्माजी के चमत्कार की शरण में रह कर जो भस्म
मिले या जड़ी बूटी मिले उसे ६ महीने नियमित सेवन करने से
भूमिका-लेखक वस्तुत लेखक बन सकता है। इसलिए जिसने
भूमिका बाँधने का काम नहीं किया हो, उसे चाहिए कि पहले व
हिमालय पहाड़ की खाक छाने।

और अब बस, इतनी लम्बी-चौड़ी भूमिका के बाद यह मेरी
भूमिका समाप्त हुई।

कुछ घरेलू दवायें

प्रेम एक बीमारी है। चपत, दुतकार और बेइज्जती का काढा पीने से शीघ्र दूर हो जाती है। जिसे इन तीनों चीजों का काढा नसीब न हो उसे चाहिये कि वह खुशामद की सोर एक माशा, बेहयाई के पत्ते तीन तोला और आवारगी की छाल दो पाव लेकर कूट-पीसकर तीन पाव पानी में पकावें, जब पानी पकते-पकते एक पाव रह जाय तब नित्य सुबह ठण्डा होने पर पीये, बुखार शीघ्र उतर जायगा।

कभी-कभी लोगो को कलेजे में चोट लग जाती है। यह चोट बहुत बुरी होती है। इसका शीघ्र इलाज न करने से टी० बी० के लक्षण दिखायी पडते लगते हैं। चुटैल मनुष्य को सर्वदा एक ऐनक अपने पास अवश्य रखना चाहिये। रोगी जब अपना मुँह शीशे में देखता रहता है तब उसका दर्द कुछ ठीक रहता है। मनोवैज्ञानिक असर यह होता है कि उसे अपनी सुन्दरता और चोट करने वाले की सुन्दरता की तुलना करने का अवसर मिलता है। कृपा की जड़ एक अगुल, अनुरोध के दस पत्ते, याचना की छाल दो भर ले। धूप मे सुखावे और सूखने के बाद कूटकर फंकी बना ले। बकरी के दूध के साथ सुबह-शाम सेवन करे। शीघ्र आराम होगा।

कुछ दूसरे अनुभवी लोगों का कहना है कि चुटैल को सत्यानाशी की जड पीनी चाहिये। कुछ महानुभाव ताडी मे चापलूसी

का चूरन मिलाकर पीने का अनुरोध करते हैं। मेरा यह नुस्खा आजमूदा नहीं है।

आँख लड़ने पर किसी-किसी की आँखों में एक हलका धुन्द छा जाता है, इसकी दवा बहुत जरूरी है, अन्यथा आँख बिगड़ जाने का डर रहता है। यों तो एक टोटका बहुत आजमूदा माना जाता है, मगर इसे लोग उचित नहीं समझते। टाल देते हैं। टोटका यों है—किसी प्रेमी व्यक्ति के अँगूठे का नख लेकर मङ्गलवार को पत्थर पर, नहाने धोने के बाद, खूब रगड़े। चंदन की तरह उतार कर आँजन दे। आँख ठीक हो जायगी। ठीक दवा इसकी यह है कि ज्योंही आँख लड़े, संतरे के छिलके का रस आँख में छोड़ दे। अन्यथा दिल धड़कने का डर रहता है।

दिल धड़कने की सुन्दर घरेलू दवा है कि नित्य एक हलका व्यायाम किया जाय। व्यायाम यों है—दायें हाथ से बायाँ कान पकड़े, बायें हाथ से दायाँ। फिर सीधे खड़ा होकर चित्त एकाग्र करे। पुनः दस बार इसी प्रकार उठे-बैठे। दो मास के बाद दिल की धड़कन ठीक हो जायगी।

यदि मूर्छा आती हो तो उस स्थिति में सौन्दर्य्यासव पीना अधिक हितकर होगा। बहुत लाजवाब दवा है। नखरा, नाज और चितवन का मिक्सचर भी फायदा करेगा। उमर के लिहाज से दवा देनी चाहिये। सौन्दर्य्यासव महँगी चीज नहीं है। सर्वत्र इफरात नहीं, पर ढूँढ़ने पर मिल जाती है। नखरा, नाज, चितवन बाजार में मिल जायँगे।

प्रकाश्य

कौतुक बनारसी हिन्दी के आधुनिक हास्य और व्यग लेखकों में विशिष्ट स्थान रखते हैं। आपको एक प्रसिद्ध हास्यरस के कवि के रूप में हिन्दी जगत भलीभाँति जानता है। विगत १५ वर्षों में आपने अपनी सैकड़ों कविताओं से सहस्त्रों की भीड़ को कवि-सम्मेलनों में हँसया है। जब तब रेडियो द्वारा आपकी कविताओं ने श्रोताओं का अच्छा मनोरजन किया है। काशी के साहित्यिक एवं सास्कृतिक जीवन को सप्राण बनाये रखने का श्रेय कौतुक बनारसी को भी है। अनेक साहित्य, सगीत. नाट्य सस्थाओं के मूल को सींचने में आप अनेक वर्षों से लगे हुए हैं।

वाराणसी के एक प्रतिष्ठित जमीदार एवं व्यवसायी घराने में जन्म लेकर भी आप सदैव स्वतत्र जीवन के अभ्यासी रहे हैं। दैनिक 'आज', संसार, तरग जैसे प्रचारित पत्रों के सम्पादन में योग देते हुए आपने अपना लेखन-कार्य प्रारम्भ किया और आज भी निरन्तर आपकी लेखनी से हास्य-सृष्टि हो रही है। देश के अनेक विशिष्ट लोग आपको इसलिए भी निकट से जानते हैं, कि आपका देशके प्रसिद्ध सामुद्रिक-शास्त्रियों एव भविष्यवक्ताओं में भी नाम है। आपके ज्योतिष-शास्त्र सम्बन्धी अनुसधानों का मूल्य भविष्य में विशेष रूप से आँका जायगा।

कलम की कमाई, फरमकला, कपोलकल्पना, कुछ कच्चा कुछ पक्का, किचकिच, कौवारोर आपकी नवीन रचनाए हैं।